सत्यमेव जयते

ज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 31

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-31
जुलाई-सितंबर 2011

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

2561 HRD/2012—1A

© कापीराइट 2011

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग),
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110 066

विक्रय हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी,
बिक्री एकक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
नई दिल्ली-110 066
दूरभाष - (011) 26105211
फैक्स - (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स,
दिल्ली - 110 054

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।
संपादक मंडल की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

2561 HRD/2012—1B

संपादन एवं समन्वय

प्रधान संपादक

अनन्त कुमार सिंह, भा.प्र.से.
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
सहायक निदेशक

प्रकाशन

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक

कलाकार

आलोक वाही

अनुक्रम

आलेख शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
प्रस्तावना		v
संपादकीय		vii
1. मनुष्य की अवधारणा– एक दृष्टि	डॉ. आनन्द प्रकाश पाण्डेय	01
2. पारिभाषिक शब्दावली निर्माण : एक सतत् प्रक्रिया	डॉ. दिनेश मणि	24
3. वाणिज्य शब्दावली– एक प्रस्तुति	सतीश चन्द्र सक्सेना	35
4. भारत में समाजवादी आंदोलन	डॉ. विश्वनाथ मिश्र	52
5. विश्व बाजार और हिंदी	डॉ. रंजित एम.	62
6. कन्या भ्रूणहत्या के उन्मूलन में साहित्य की भूमिका	कृष्ण कुमार कौशिक	71
7. मूल्य-आधारित शिक्षा : शिक्षक के शैक्षिक एवं सामाजिक दायित्व	डॉ. विमलेश शर्मा	81

विविध स्तंभ

- ☐ इस अंक के लेखक 86
- ☐ मानक शब्द-भंडार 88
- ☐ लेखकों के लिए अनुदेश 94
- ☐ आयोग के कार्यक्रमों में सहयोजित होने के लिए प्रोफार्मा 97
- ☐ पत्रिका की सदस्यता हेतु ग्राहक/अभिदान फार्म 98

प्रस्तावना

यह वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का स्वर्ण जयंती वर्ष है। आयोग की स्थापना, 1960 के राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार पहली अक्तूबर, 1961 को हुई थी। इसकी स्थापना के समय से लेकर अब तक आयोग ने हिंदी भाषा एवं अन्य भारतीय भाषाओं में नए-नए तकनीकी पर्यायों के निर्धारण का कार्य किया है और विगत 50 वर्षों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी के लगभग 8 लाख पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। आयोग ने अपनी योजनाओं के माध्यम से तकनीकी शब्दों और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी भाषा के अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आयोग राष्ट्रीय स्तर पर शब्दावली संबंधी गतिविधियों का केंद्र बना हुआ है। उल्लेखनीय है कि आयोग हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों के निर्माण और निर्धारण के साथ-साथ तकनीकी कोशों, शब्दावलियों, परिभाषा-कोशों और विश्वकोशों के प्रकाशन का कार्य भी कर रहा है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करने का कार्य कर रहा है कि निर्मित शब्दों और उनकी परिभाषाओं का ज्ञान छात्रों, शिक्षकों, विद्वानों, वैज्ञानिकों समेत सभी प्रयोक्ताओं को उपलब्ध हो। आयोग के कार्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए आयोग प्रचार-प्रसार के विभिन्न साधनों, यथा–कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, अभिविन्यास कार्यक्रमों, संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों के आयोजन के माध्यम से शब्दावली के

उचित प्रयोग के प्रचार-प्रसार का कार्य भी करता है। इनके अलावा आयोग वैज्ञानिक और मानविकी विषयों के लिए दो पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करता है ताकि इनमें प्रकाशित लेखों में संबद्ध विषयों की शब्दावलियों का प्रयोग करके उन्हें लोकप्रिय बनाया जा सके। 'ज्ञान गरिमा सिंधु' इन्हीं दो पत्रिकाओं में से एक है। इसके माध्यम से आयोग मानविकी-विषयक शब्दावलियों का प्रयोग करने और उन्हें लोकप्रिय बनाने हेतु प्रयासरत है। पत्रिका का 31वाँ अंक पाठकों के हाथ में देते हुए हमें विश्वास है कि यह अपने उद्देश्यों में सफल होगी।

मुझे पूर्ण आशा है कि देश के विभिन्न भागों में आयोग द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में विद्यालयों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थाओं के शिक्षकों, वैज्ञानिकों, पत्रकारों, लेखकों, आदि का सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा और यह पत्रिका अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगी।

नई दिल्ली

(अनन्त कुमार सिंह)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग

संपादकीय

'ज्ञान गरिमा सिंधु' के 31वें अंक में मानव के उत्कर्ष से संबधित नौ लेख शामिल किए गए हैं। अंक का आरंभ मनुष्य मात्र को समझने की चेष्टा को समर्पित लेख 'मनुष्य की अवधारणा' से होता है। दर्शनशास्त्र के विद्वान डॉ. आनंद प्रकाश पाण्डेय का यह आलेख आदिकाल से लेकर अब तक के मनुष्य और मनुष्यता के विकास की कथा तो कहता ही है, यह उन तत्वों को भी रेखांकित करता है जिनके कारण जीव मुनष्य में परिणत होता है। मनुष्यत्व प्रदान करने वाले ऐसे ही सहायक तत्वों में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है। शिक्षा यदि प्रशिक्षु को उसकी मातृभाषा में मिले तो पौष्टिक भोजन की भाँति वह उससे अपना पूर्ण मानसिक स्वास्थ्यवर्धन कर पाता है। लेकिन प्रत्येक भाषा परिवर्तनशील तकनीकी ज्ञान को पूर्णता में व्यक्त कर पाने के लिए अपने तकनीकी शब्दकोश के परिवर्धन की अपेक्षा रखती है। डॉ. दिनेश मणि का 'पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण एक सतत प्रक्रिया' शीर्षक आलेख विभिन्न विषयों में भाषा-परिवर्धन की उसी सतत प्रक्रिया को रेखांकित करता है। श्री सतीश चंद्र सक्सेना द्वारा लिखित 'वाणिज्य शब्दावली– एक प्रस्तुति' शीर्षक लेख इस शृंखला की अगली कड़ी है जहाँ श्री सक्सेना वाणिज्य जैसे आज के दौर के लोकोपयोगी विषय में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा संस्तुत शब्दावली से परिचित कराने के

साथ-साथ उसे लोक-व्यवहृत बनाने की प्रविधियों की जानकारी प्रदान कर रहे हैं।

हर वर्ष सितंबर माह राजभाषा हिंदी को अपने दैनंदिन कार्यव्यवहार में अधिकाधिक प्रयुक्त करने के संकल्प का अवसर लेकर उपस्थित होता है। इस अवसर पर डॉ. रंजित एम. द्वारा लिखित 'विश्व बाजार और हिंदी' शीर्षक आलेख भी आपको पसंद आएगा। इनके साथ-साथ राजनीतिक विचारधारा के रूप में 'भारत में समाजवादी आंदोलन' शीर्षक लेख सहित अन्य आलेख भी इस अंक को गरिमा प्रदान करते हैं। अपनी संपूर्णता में यह अंक आपको कैसा लगा, यह जानने की हमारी जिज्ञासा हमेशा की तरह बनी रहेगी।

(डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल)
सहायक निदेशक

मनुष्य की अवधारणा – एक दृष्टि

डॉ. आनन्द प्रकाश पाण्डेय

मनुष्य सृष्टि का सिरमौर है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि *बड़े भाग मानुस तन पावा।* वैज्ञानिक एवं दार्शनिक तथ्यों की खोज करने वाला और अनेक महत्वपूर्ण कलाकृतियों, रचनाओं का निर्माता मनुष्य कैसा जीव है? उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? उसका स्वभाव कैसा है? प्रकृति एवं विश्व के साथ उसका संबंध कैसा है? ये सारे प्रश्न सदैव भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों को उद्वेलित करते रहे हैं।

मनुष्य शब्द के समकक्ष अनेक शब्द प्रचलित हैं यथा– जीव, आत्मा, पुरुष, व्यक्ति आदि। परंतु ये सभी शब्द आपस में पर्यायवाची नहीं हैं। इनके भावार्थ में काफी समानता है। मनुष्य की अनेक परिभाषाएँ की गई हैं। कुछ लोग मानते हैं कि मनुष्य एक पंखरहित द्विपद है। कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य एक शरीरधारी आत्मा है। किसी ने मनुष्य को हँसने वाला जानवर माना है। कुछ लोग मानते हैं कि मनुष्य यंत्रों का उपयोग करने वाला जीव है। अरस्तू के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

ये सभी परिभाषाएँ एकांगी हैं एवं मनुष्य के स्वरूप का यथार्थ वर्णन नहीं करतीं। मनुष्य की परिभाषा जो सामान्य रूप से पर्याप्त समझी गई है, वह यह है कि "मनुष्य एक बुद्धिमान पशु है। बुद्धि मनुष्य को पशु से भिन्न करती है।"

मध्यकालीन दार्शनिक इब्नुल अरबी के अनुसार सृष्टि में मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है। वह परमात्मा की अन्यतम अभिव्यक्ति है। मनुष्य का चरमोत्कर्ष 'पूर्ण मानव' है जिसमें ईश्वर के समस्त गुण व्यक्त होते हैं। पूर्ण मानव मनुष्य तथा परमात्मा के बीच की कड़ी है। ईश्वर उसी में अपने आपको पूर्ण रूप से प्रकाशित करता है और उसी के माध्यम से अपने को जानता है।

मनुष्य एक अविभाज्य इकाई है। वह किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति के न तो समकक्ष है और न समान है। वह अपने विषय में जो कुछ जानता है या अनुभव करता है उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता। उसकी अपनी इच्छाएँ, विचार, चिन्तन, प्रवृत्तियाँ, आदर्श और प्रतिक्रियाएँ होती हैं जो उसे अन्य से भिन्न करती हैं। जिस प्रकार की एकरूपता वस्तुओं में होती है वैसी एकरूपता मनुष्यों में नहीं होती। वह एक सावयव समष्टि (Units Multiplex) है। उसके अस्तित्व में अनेक प्रकार की संभावनाएँ निहित हैं। मनुष्य अपने लिए जैसा निर्णय कर लेता है वैसा ही आचरण करता है। भविष्य की अनेक संभावनाओं पर विचार करते हुए वह प्रगति करता है। अनेक परिवर्तनों के बावजूद मनुष्य को सदैव इस बात का बोध रहा कि उसका जीवन सदा उसका ही था और उसका ही है। इस शाश्वतता के पीछे वह एक 'स्व' को देखता है।

मनुष्य कर्ता और भोक्ता दोनों है। वइ स्वभावतया क्रियाशील रहता है। वह कभी भी निष्क्रिय नहीं रहता है। *गीता* कहती है कि मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। जब तक शरीर

का आश्रय बना हुआ है तब तक कर्मों का परित्याग हो ही नहीं सकता।

मनुष्य एक समष्टि है। वह साकार जीवित वास्तविकता है। उसमें चेतना और शरीर दोनों हैं। शरीर के अभाव में चेतना नहीं मिलती और चेतना के अभाव में जो शरीर देखने को मिलता उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता। भौतिक अणुओं के समूह को मनुष्य नहीं कहते हैं। शव केवल शव है, उसे शंकरदत्त, गुरुदत्त या देवदत्त नहीं कहते हैं।

प्राणिमात्र अपने अस्तित्व के प्रति अभिनिवेश रखता है और *'मा न भूयम्, भूयासम्'* इस अंतर्निहित प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपनी परिस्थिति के साथ संपादन की चेष्टा में निरत रहता है। मनुष्य के अंदर भौतिक पर्यावरण से जूझने की अद्भुत क्षमता होती है जोकि उसे इंद्रियों और मस्तिष्क के विकास से उपलब्ध होती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से विश्व का इतिहास एक वैज्ञानिक शृंखला है। मनुष्य इस विकास शृंखला की अंतिम कड़ी है। इसके निकटतम पूर्वज उन्नत पशु थे। चार्ल्स डार्विन ने अपनी पुस्तक *द ओरिजन आफ स्पेसीज* में जीव की उत्पत्ति का वैज्ञानिक सिद्धांत स्थापित किया है। उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं वे लाखों वर्षों में धीरे-धीरे भौतिक परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको परिवर्तित करके विकसित हुए हैं। इसे उन्होंने प्राकृतिक वरण का सिद्धांत (The Theory of Natural Selection) कहा। प्राकृतिक वरण प्रत्येक दिन और प्रत्येक घंटा विश्वभर में शांत भाव से निरंतर कार्य करता रहता है और जब भी उसे मौका मिलता है वह प्रत्येक जीव में कार्बनिक और अकार्बनिक स्थितियों में सुधार लाता रहता है। इस प्रकृति के वरण में कुछ जीव अन्य जीवों की तुलना में कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों में बेहतर ढंग से जीवित रहते हैं। ऐसे जीव

अधिक संतानों का उत्पादन करते हैं और समाज में आमफहम हो जाते हैं। जो जीव इन नई परिस्थितियों से सामंजस्य नहीं बना पाते हैं वे नामावशेष हो जाते हैं। डार्विन ने इस मत का खण्डन किया था कि ईश्वर ने किसी विशेष काल में प्राणियों की रचना की है। कालांतर में डार्विन की विचारधारा में परिवर्तन हुआ। *डेसेन्ट आफ मैन* में वह कहते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति कभी भी नहीं जानी जा सकती। मनुष्य की उत्पत्ति की समस्या का समाधान विज्ञान द्वारा नहीं किया जा सकता। प्रो. ओसबर्न तथा सर आर्थर के अनुसार मनुष्य बंदरों की शाखा से एक करोड़ पचास लाख वर्ष पहले अलग होना प्रारंभ हुआ था। आज भी मनुष्य के अधिकांश व्यवहार पशु के समान ही हैं। दोनों को भूख लगती है, दोनों को प्रतिकूल परिस्थितियों में पीड़ा का अनुभव होता है, प्राकृतिक वातावरण में वे अधिक से अधिक सुविधाएँ चाहते हैं। दोनों अधिक परिश्रम के बाद थक जाते हैं, विश्राम करते हैं, नींद लगती है, भूख लगने पर उनमें भोजन की इच्छा होती है और भोजन जुटाने का प्रयत्न करते हैं। दोनों शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शरीर के अंदर की गंदगी को निकालते हैं तथा वयस्क होने पर विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होते हैं। इन सामान्य गुणों के कारण मनुष्य एवं पशु में काफी समानताएँ हैं। लेकिन इन समानताओं के बावजूद मनुष्य, मनुष्य है और पशु, पशु है।

पशु जाति से मनुष्य जाति में उदय के बीच एक समय ऐसा भी था जब मनुष्य पृथ्वी पर नंगा घूमता था। उसके सामने जो परिस्थितियाँ उसके अस्तित्व के लिए घातक मालूम पड़ती थीं। वह उनका मुकाबला मूल पाशविक प्रवृत्तियों से करता था अर्थात् या तो वह भाग जाता था, या संघर्ष करता था, या डर जाता था, या साहसपूर्वक उन पर नियंत्रण पाने का प्रयत्न करता था। वह डरता केवल उन्हीं चीजों से था जिसे अपने बलिष्ठ हाथों से नियंत्रित नहीं कर पाता था। यही वह अवस्था

थी जिसमें वह पशु जाति से कुछ भिन्न दिशा में चला गया। इस नई जाति की विशेषता थी कि वह आँधी, पानी, गर्मी, सर्दी, पहाड़, मैदान, जंगल, रेगिस्तान आदि की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बदलने के लिए प्रयत्नशील रहता था। उसने निवास, वस्त्र, भोजन, भाषा, सभ्यता तथा संस्कृति का निर्माण किया। प्राकृतिक शक्तियों से संघर्ष करने के लिए उसने औजारों और हथियारों का निर्माण किया। इस प्रकार धीरे-धीरे उसने अपनी प्रसुप्त शक्तियों का विकास किया। मनुष्य भौतिक वस्तुओं एवं शक्तियों के स्वरूप नियंत्रित व रूपांतरित कर सकता है। मनुष्य निरंतर अपने जीवन में परिवर्तन करता रहता है। प्रगति करना उसका स्वभाव है। उसमें बुद्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। पूर्व की अपेक्षा अब वह अधिक सुखमय जीवन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार विकासोन्मुख मनुष्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जन्म के समय आत्मा की उपस्थिति नहीं होती इसका क्रमिक विकास सामाजिक शक्तियों, संस्कृति तथा क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप होता है। समाज वह संस्था है जो अपने जीवन की पद्धति और भाषा के माध्यम से विकासोन्मुख मनुष्य को एक व्यक्ति होने का बोध कराता है। वहीं पर उसे अहं का बोध होता है। धीरे-धीरे वह अपने को अन्य व्यक्तियों से अलग महसूस करने लगता है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसी के अनुरूप उसका खाना-पीना, यौन-व्यवहार और आवेग की अभिव्यक्तियाँ बन जाती हैं। लेकिन इस क्रियाशीलता से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि 'मनुष्य मात्र सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है और उसके सारे आचरण वातावरण से निर्धारित होते हैं।

संसार में उपलब्ध सभी वस्तुओं में मनुष्य ही मानसिक रूप से विकसित है। उसमें संस्कृति को ग्रहण करने तथा दूसरों तक भेजने की क्षमता होती है। मनुष्य के अंदर आस्था, आशा और अपने भाग्य

तथा जीवन से असंतुष्ट होने की असाधारण विशेषताएँ हैं। इसलिए समस्त प्राणियों में मनुष्य का गौरव अद्वितीय है।

इस प्रकार सृजनात्मकता तथा बौद्धिकता मनुष्य का अनिवार्य लक्षण है। प्रत्येक समाज मनुष्य से नैतिक व्यवहार की अपेक्षा करता है। नैतिक व्यवहार उपयोगी वस्तुओं का न्यायपूर्ण वितरण है। नैतिक मनुष्य, अन्य मनुष्यों के स्वार्थों तथा अधिकारों को आघात पहुँचाए बिना अपने साध्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसके विपरीत अनैतिक मनुष्य योग्यता, क्षमता, बुद्धि से रहित स्वार्थी होने के कारण दूसरों की कीमत पर अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करता है।

मनुष्य के उपर्युक्त स्वरूप के आलोक में मनुष्य के स्वभाव में तीन तत्त्व देखे जा सकते हैं :–

(1) वनस्पति रूप
(2) पशु रूप
(3) मानव रूप

इब्नुल अरबी ने भी मनुष्य में तीन तत्व बताए हैं– (1) अंतश्चेतना, (2) आत्मा और (3) शरीर। पुनः आत्मा का भी वह तीन भेद करते हैं– (1) बौद्धिक आत्मा, (2) वनस्पतीय आत्मा और (3) पाशविक आत्मा। वनस्पति रूप में मनुष्य पेड़-पौधों जैसा भोजन करता है, उत्पन्न होता है, बढ़ता है, संतान पैदा करता है, जीर्ण होता है और अंत में मर जाता है। पशु रूप में वह क्रोध, लोभ, स्नेह, भाव आदि प्रकट करता है, युद्ध करता है, संग्रह करता है, संतान का पालन-पोषण करता है। मानव रूप में वह ज्ञान प्राप्त करता है, संकल्प-विकल्प, इच्छा, निर्माण, विध्वंस आदि करता है। इन तीनों रूपों में मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना जा सकता है।

मनुष्य के स्वरूप के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं जिनमें प्रमुख निम्न हैं :–

(1) मनुष्य आत्मा है।

(2) मनुष्य भौतिक शरीर है।

(3) मनुष्य आत्मा और शरीर का योग है

(4) मनुष्य एक अविश्लेष्य मौलिक सत्ता है जिसके अंदर मानसिक एवं भौतिक गुण हैं।

(5) मनुष्य अनुभूतियों का योग है।

मनुष्य मात्र आत्मा है, इसके मानने वालों का मत है कि मनुष्य नित्य एवं चेतन द्रव्य है। परंतु यह मत ठीक नहीं है। यदि आत्मा शरीरहीन है तो वह मनुष्य नहीं है। हम मनुष्य उसे कहते हैं जो सांसारिक जीवन-यापन करता है। शुद्ध आत्मा जीवनपरक लक्षणों से मुक्त रहती। वह मनुष्य नहीं है।

मनुष्य को मात्र भौतिक शरीर मानने वाले विचारक भौतिकवादी हैं। यूनानी दार्शनिक ल्यूसिपस, डेमोक्रीटस, एपीकुरस, टॉमस हॉब्स, जॉन टॉलैण्ड, हालबैच, कैबेनिस, बर्गसॉ आदि ने मनुष्य का मूल जड़त्व ही माना है। भारतीय चिन्तक आचार्य बृहस्पति ने भी भूत को ही मौलिक तत्व माना है। उनके अनुसार भूत नित्य एवं शाश्वत है। विभिन्न कालों में वह एक ही रहता है। प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर भूत के अतिरिक्त किसी को भी प्रामाणिक मानना संभव नहीं है। *'स्थूलोऽहम्, कृशोऽहम्'* आदि अनुभव वाक्य से भी इसकी मौलिकता प्रमाणित होती है। मनुष्य चार भूतों, भूमि, जल, अग्नि और वायु से उत्पन्न होता है।

डेकार्ट मानता है कि मनुष्य विचारवान और विस्तारवान है। उसका मन या आत्मा विचारवान है और देह विस्तारवान है।

स्पिनोजा मानता है कि मनुष्य एक अविश्लेष्य मौलिक सत्ता है। वह स्वयं एक मूलभूत इकाई है, जिसके मानसिक तथा भौतिक दो गुण हैं। मनुष्य तत्त्व न तो मन है और न शरीर। मनुष्य, मनुष्य है और अविभाज्य है, वह जिसके मानसिक तथा भौतिक गुणों को धारण करता है। भारतीय दार्शनिक रामानुज के अनुसार भी मनुष्य देह से विलक्षण है। वह नित्य स्वयं प्रकाश, अनंत, आनंदरूप, अव्यक्त, अचिन्त्य निरवयव, निर्विकार तथा ज्ञान का आश्रय है। उसके अनुसार मनुष्य या जीव तीन प्रकार के हैं – बद्ध, मुक्त तथा नित्य। बद्ध जीव संसार के जन्म मरण के चक्र में विचरण करते रहते हैं। मुक्त जीव संसार के प्रपंच से निवृत्त हो चुके होते हैं। नित्य जीव वे हैं जो जन्म और मरण के चक्र से नित्य मुक्त हैं। नित्य जीव जगत बैकुण्ठ में निवास करते हैं।

संवृत्तिवादियों का मानना है कि भौतिक सत्ता जैसी कोई सत्ता नहीं है। मनुष्य प्रत्यय का विश्लेषण मानसिक एवं भौतिक कारकों में नहीं किया जा सकता। ह्यूम के अनुसार मनुष्य केवल अनुभूतियों का समूह है। मनुष्य की संरचना जिन अनुभूतियों से होती है वे पौर्वापर्य या क्रम (Successioon) से घटित होती हैं।

श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य सजीव शरीर में आबद्ध मन है। मनुष्य की मनः शक्ति एक स्थूल मस्तिष्क में अंतर्निहित तमसाच्छन्न और विकृत होकर कार्य करती है। पराधीनता के कारण वह चरम शक्ति और स्वतंत्रता की अपनी उज्ज्वल संभावनाओं को खो बैठती है। मनुष्य से ऊपर श्री अरविन्द एक अन्य सक्रिय चेतना की उपस्थिति मानते हैं जिसे वे अतिमानव कहते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार मनुष्य तथा तिर्यन्च (पशु, पक्षी, पेड़, पौधे आदि) मध्य लोक में रहते हैं। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं आर्य तथा म्लेच्छ। जो सद्गुणों को धारण करते हैं वे आर्य कहलाते हैं। अन्य को

वे म्लेच्छ कहते हैं। मनुष्य को वे जीव कहते हैं। उनके अनुसार जो विभिन्न वस्तुओं को जानता है, देखता है, सुख की लालसा करता है और दुःख से भयभीत होता है, लाभ एवं हानि का कार्य करता है और उनके फलों को भोगता है, वह जीव है। स्वभावतः जीव के अंदर अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य है। जीव शाश्वत है। इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यह किसी के द्वारा सृजित नहीं है।

बुद्ध के अनुसार प्रत्येक मनुष्य नाम रूपात्मक है। रूप का तात्पर्य भौतिक शरीर से है और नाम का तात्पर्य मानसिक प्रवृत्तियों से है। शरीर और मन के परस्पर संयोग से मनुष्य का निर्माण हुआ है। इस प्रकार मनुष्य पंच स्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) का संघात है। जब तक इन स्कंधों में परस्पर संघात रहता है तब तक मनुष्य का अस्तित्व भी रहता है। इस संघात के नष्ट होते ही मनुष्य का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है।

वेदों और उपनिषदों में मनुष्य के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार जो ग्रहण करता है, प्राप्त करता है, विषयों का भोग करता है एवं जो अमर है वह आत्मा है। आगे मनुष्य के संबंध में दोनों में यह निर्देश उपलब्ध है कि *पश्यंतु विश्वे अमृतस्य पुत्राः माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ; आपाम सोमं अमृता अभूम अदर्शम ज्योतिः अविक्षमृदेवान्। किमास्मान् कृण वदणतिः किमु धूतिः अमृतमर्त्यस्य।* ये कथन यह बतलाते हैं कि मनुष्य न तो क्षुद्र है, न मर्त्य, वह तो एक महान हस्ती है, वह अमृत सरीखे परम तत्त्व का पुत्र है।

सांख्य दर्शन ने मनुष्य को पुरुष के रूप में व्याख्यायित किया है। यह पुरुष तत्त्व चित् एवं सत् है तथा विशुद्ध चैतन्य रूप है। सांख्य पुरुष को अनेक मानते हैं। शंकराचार्य मनुष्य को ब्रह्मा मानते हैं। उनके अनुसार दोनों में अभेद है। जीव, जगत आदि मिथ्या हैं। इन

मिथ्या वस्तुओं से छुटकारा पाना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। मनुष्य की श्रेष्ठता अद्वैत वेदांत भी मानता है।

मनुष्य के अस्तित्व का ज्ञान अनुभव-संवेदय है। अहं प्रत्यय उसकी सत्ता को सिद्ध करता है :–

अहमित्येण यो वेद्यः स जीव इति कीर्तितः।
स दुःखी स सुखी चैव स पात्रं बन्धमोक्षयोः।।

माधवाचार्य के अनुसार जीव और अहंकार अभिन्न हैं। आत्मा का संबंध सदैव अहंकार से बना रहता है। अनुभव के क्षेत्र में कोई भी स्थिति ऐसी नहीं है जहाँ अहंकार और जीव मुक्त हों। सम्पूर्ण क्रियाएँ एवं भोग अहंकार पर ही आधारित हैं। अहंकार मनुष्य को अन्य मनुष्यों एवं तत्वों से पृथक करता है।

चेतना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। चार्वाक् मतावलंबी चेतना को भूतों से उत्पन्न मानते हैं। किन्तु यदि यह स्थिति सही होती तो शव को भी चैतन्य होना चाहिए क्योंकि उसमें सभी भूतांश विद्यमान हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। वस्तुतः जीवित आत्मा ही चेतन होता है।

मनुष्य, मनुष्य में भेद है। उनकी संख्या अनंत है। कर्म-सिद्धांत जीवों की बहुलता का समर्थक है। हिन्दू शास्त्रों में देव, मानव और असुर आदि योनियाँ मानी गई हैं जिसमें मनुष्य कर्मानुसार पहुँचता है। परंतु यह मत उचित नहीं है। अनादि कर्म परंपरा यह बतलाने में असमर्थ है कि कोई आत्मा अच्छी या बुरी क्यों होती है। यदि सभी आत्माओं में भेद नहीं है, तब सभी की स्थिति एक जैसी होनी चाहिए। मनुष्य-मनुष्य में भेद कहाँ से आ गया?

मनुष्य की प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए माधवाचार्य ने मनुष्य की विविधता को तीन रूपों में वर्गीकृत किया है – (1) मुक्तियोग्य मनुष्य, (2) तमोयोग्य मनुष्य और (3) नित्य संसारिन् मनुष्य। मनुष्य का विकास इसी तारतम्यता में होता है इसलिए मनुष्यों में भेद पाया

जाता है। इस तारतम्यता का समर्थन वैदिक एवं उत्तर-वैदिक श्रुतियाँ करती हैं।

(क) *खले न पर्षान प्रतिहन्मि भूरि।*
किं मां निन्दन्ति शत्रवोः निन्दाः।।

(ख) *अनारम्भणे तमसि प्रविध्यम्।*

(ग) *उर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्या अधोगच्छन्ति तामसाः।*

(घ) *तेषां तमः शरीराणां तम एव परायणम्।*

इस प्रकार स्वरूप तारतम्यता के आधार पर मनुष्य की विविधता को स्वीकार किया जा सकता है। पाश्चात्य दार्शनिक ह्यूम भी इसी मत का समर्थन करता है।

मानव स्वभाव के दृष्टिकोण से मनुष्य में दो विपरीत अवधारणाएँ दिखलाई पड़ती हैं :–

(1) मनुष्य स्वभाव से दुष्ट है।

(2) मनुष्य स्वभाव से साधु है।

स्ट्रासन ने मनुष्य को पुरुष कहा है। उसके अनुसार पुरुष एक अविश्लेष्य मौलिक सत्ता है। पुरुष को मानसिक अनुभूतियों तथा शरीर का योग नहीं मानना चाहिए। पुरुष एक मूलभूत इकाई है जिसमें दो प्रकार के गुण होते हैं – मानसिक तथा भौतिक। पुरुष तत्त्वतः न तो मन है, न शरीर। पुरुष, पुरुष है और अविभाज्य है। वह मानसिक एवं भौतिक गुणों से युक्त है। यह मत एकवादी है। ह्यूम कहता है कि मनुष्य केवल अनुभूतियों का समूह है। मनुष्य की संरचना जिन अनुभूतियों से होती है वे पौर्वापर्य या क्रम हैं। वह मनुष्य की आत्मा एवं शरीर में भेद नहीं करता। भारतीय दर्शन में पुरुष को आत्मा माना गया है। वह वस्तु से भिन्न है। ईश्वर, मनुष्य नहीं है। *गीता* में पुरुष की तीन कोटियों का वर्णन किया गया है :–

(1) क्षर पुरुष – चराचर नश्वर जगत

(2) अक्षर पुरुष – जीवात्मा

(3) पुरुषोत्तम

तीनों कोटियों में भेद है। योग दर्शन में भी ईश्वर को 'पुरुष विशेष' से संबोधित किया गया है। उसे पुरुष विशेष इसलिए कहा गया है क्योंकि वह सामान्य पुरुष की तरह कर्म, पुनर्जन्म एवं मानसिक दुर्बलताओं से युक्त नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य ईश्वर नहीं है।

उपर्युक्त परिभाषा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य एक जीवत भौतिक शरीर है जो मानसिक अनुभूतियों से युक्त है। सभी मनुष्यों में एक आत्मा निवास करती है, उसके समस्त कार्य इसी आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य दुष्ट क्यों होता है?

मैकियावली, अरस्तू के इस मत को अस्वीकार करता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके अनुसार सामान्यतः मनुष्य कृतघ्न, स्वार्थी, सनकी, धोखेबाज, कायर, लोभी और अहंकारी होता है। अपने अहं की संतुष्टि के लिए वह दूसरों से संघर्ष करता है। शापेनहावर का भी कहना है कि मनुष्य मूलतः बर्बर और भयानक जीव है, जो बाघ और चीते से कम जंगली नहीं है। प्रत्येक मनुष्य भीतर से भयानक रूप में स्वार्थी होता है। टॉमस हॉब्स और डार्विन भी इसी मत के समर्थक रहे हैं। शापेनहावर ने अनेक उदाहरण देकर उक्त मत की पुष्टि की है। अमेरिका में सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं जिसमें पति ने पत्नी को या पत्नी ने पति को केवल इसलिए जहर दिया कि जीवन बीमा के रुपये मिल जाएँ। मैकलियड की पुस्तक *ट्रेवल्स इन ईस्टर्न अफ्रीका* में दासों के प्रति नृशंस व्यवहार की कहानियाँ विश्वविख्यात हैं। यशपाल की पुस्तक *झूठा सच* में सांप्रदायिक एवं जातिगत दंगों में मनुष्य की पाशविकता पराकाष्ठा पर दर्शाई गई है। दहेज के लालच

में मनुष्य किस नीचता पर उतरकर पत्नी की हत्या कर देता है, इसका भी उदाहरण आए दिन समाज में दिखलाई पड़ता है। राजनीतिज्ञों द्वारा अपने विरोधियों का पाशविक दमन करना, रोजगार एवं संपत्ति के लालच में माता–पिता की हत्या कर देना आदि को देखकर कौन कहेगा कि मनुष्य अच्छा है। गोबिन्यू का कथन है कि संसार में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो दूसरों को बिना किसी प्रयोजन के कष्ट पहुँचाता है। डार्विन ने जीवन-संग्राम के सिद्धांत में यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की जैविक प्रकृति ही संघर्ष एवं स्वार्थमूलक है। फ्रायड ने मनुष्य में आक्रमण प्रवृत्ति एवं मुमूर्षा प्रवृत्ति को माना है। हॉब्स की धारणा है कि मनुष्य मूलतः असामाजिक प्राणी है। वह अपने प्रसंविदा सिद्धांत में कहता है कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी एवं नीच होता है। इस पर अंकुश लगाने के लिए शक्ति-संपन्न निरंकुश राज्य सत्ता की आवश्यकता है। इस प्रकार कलह, ईर्ष्या, द्वेष आदि ने मनुष्य के संपूर्ण मूल्यों को नष्ट कर दिया है। मनुष्य की आज जो स्थिति है वहाँ तक पहुँचने का कार्य मनुष्य ने ही किया है। मनुष्य के इस व्यवहार से समाज का उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या मनुष्य के उपर्युक्त व्यवहार से यह मान लेना उचित होगा कि मानव स्वभाव से बुरा होता है? क्या बुरापन हमारें जीवन का स्थायी अंग है? मानव सभ्यता का इतिहास बतलाला है कि समाज में गांधी, टैगोर, विवेकानंद, दयानंद स्वामी आदि अनेक उच्चकोटि के मनुष्य हुए हैं जिनके प्रयास से अनेक कुरीतियों, यथा बाल प्रथा, दास प्रथा, सती प्रथा आदि का ह्रास हुआ है। मांटेग्यू कहता है कि मनुष्य हिंसक, आक्रमणकारी आदि दुर्भावनाओं के साथ जन्म नहीं लेता। हम जन्म के पश्चात् इसे मनुष्य के स्वभाव पर आरोपित करते हैं। जॉन लॉक मानता है कि मनुष्य में स्वाभाविक अच्छाई है। प्रकृति ने मनुष्य को विवेकशील, शांतिप्रिय,

नीति-नियमों का पालन करने वाला बनाया है। मनुष्य में शारीरिक एवं मानसिक समानता नहीं होती बल्कि नैतिक दृष्टि से वे एक दूसरे के समान होते हैं। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य प्राकृतिक नियमों की अपने हित के अनुसार व्यवस्था करता था जिसके कारण वर्ग-संघर्ष होता था। मनुष्यों द्वारा सामाजिक समझौता करके सिविल शासन की स्थापना की गई परंतु इस व्यवस्था में भी विचारकों में मतभेद है। हॉब्स कहता है कि सिविल शासन में मनुष्य की प्रवृत्ति के कारण शासक का स्वभाव अमर्यादित रहता है जबकि लॉक की मान्यता है कि संविदा द्वारा मर्यादित शासन व्यवस्था स्थापित होती है। संविदा का आधार जनता की सहमति है। धीरे-धीरे इस व्यवस्था का स्थान एक नयी सभ्यता ने ले लिया जिसे महाजनी सभ्यता कहा जाता है। इस नई महाजनी सभ्यता ने पूरे विश्व को अर्थ पर केंद्रीकृत कर दिया जिसके कारण एक जबरदस्त अनैतिक प्रतियोगिता प्रारंभ हो गई। पच्चीस-तीस वर्षों के इस महाजनी युग ने दुनिया को यह सबक सिखाया कि जहाँ रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठा है वहीं नैतिकता, मानवता, प्रेम, सद्भावना ईमानदारी खत्म हुई है। परिवार परमाणु की तरह खंड-खंड हो गए। समस्त नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो गया। मनुष्य पुनः हॉब्स की दी हुई परिभाषा, 'एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए भेड़िया है' को चरितार्थ करने में लगा हुआ है।

रूसो मानता है कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा होता है। उसकी प्रमुख प्रवृत्ति आत्म-प्रेम है। विवेक मनुष्य का पाशविक गुण है। विवेकशीलता के विकास के साथ मनुष्य के सहज गुण कलुषित हो जाते हैं। रूसो ने भावुकता और अनुभूतियों को विवेक से श्रेष्ठ माना है। वह कहता है कि हम मनुष्य पर जो हिंसक, क्रूर, जंगली, भयानक आदि गुणों को आरोपित करते हैं, वह गुण जन्मजात नहीं होते। वातावरण में मनुष्य इसको अर्जित करता है। युंग तथा

फिनोमिनालाजकीय मनोविश्लेषकों का मानना है कि मनुष्य में नैतिकता और धार्मिकता आदि उच्च गुण भी हैं। हेगेल, डार्विन, मार्क्स आदि ने जिस संघर्ष को विकास का प्रेरक माना है, वह विकास की प्रारंभिक अवस्था है। मार्क्स स्वयं इस संघर्ष का निराकरण करना चाहते थे। समाज में जो चोरी, हत्याएँ, लड़ाई, दंगे हो रहे हैं, मनुष्य उनका निराकरण करना चाहता है। यदि मनुष्य स्वभाव से क्रूर होता तो वह इस प्रकार का प्रयास क्यों करता? हमारी संपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्था मनुष्य को अच्छा मानने पर निर्भर है।

मनुष्य स्वभाव से अच्छा या बुरा है? वस्तुतः ये दोनों विचार एकांगी हैं। मानव सभ्यता के इतिहास में यदि करुणा, प्रेम, दया की गंगा बही है तो मानवीय क्रूरता का वीभत्स रूप भी देखने को मिला है। मनुष्य में दोनों प्रवृत्तियाँ विराजमान रहती हैं। उसमें संस्कार-परिष्कार होता रहता है।

वेदों एवं उपनिषदों के अनुसार मनुष्य न तो क्षुद्र है, न मर्त्य, वह एक महान जीव है। वह अमृत सरीखे परमतत्त्व का पुत्र है। अद्वैत वेदांत में भी मनुष्य का लक्ष्य मिथ्यात्त्व जगत से छुटकारा पाना है। *ऋग्वेद* के पुरुष सूक्त में विश्वव्यापी विराट पुरुष की बड़े विस्तार से स्तुति की गई है। भारतीय वाङ्मय में मनुष्य की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य की मनुष्यता और उसकी प्रगति अपने को श्रेष्ठ समझने और दूसरों को समझाने में ही निहित है।

दर्शन के इतिहास का विहंगावलोकन करने पर हम यह पाते हैं कि मनुष्य के संबंध में विभिन्न दर्शनों में विभिन्न विचार थे। यूनानी दर्शन का मुख्य प्रयोजन मनुष्य को 'बुद्धिमान' बनाना था। इसी प्रयोजन के बल पर उन्होंने तीन शतकों में नए-नए आविष्कारों व खोजों से दुनिया का चोला ही बदल दिया। चीनी परंपरा ने मनुष्य को

'नीतिवान' बनाने पर जोर दिया। भारतीय परंपरा ने जीव और ब्रह्मा के साक्षात्कार पर बल दिया। यहूदी परंपरा में इस विचार को स्थापित करने पर बल दिया गया कि ईश्वर भी मानव कल्याण में रुचि रखता है।

उपर्युक्त विचारों को देखने से स्पष्ट होता है कि यूनानियों की मनुष्य संबंधी अवधारणा भारतीय दृष्टि से काफी साम्य रखती है। मनुष्य में एक ऐसा तत्त्व है जो उसे मनुष्य बनाता है। इसका संबंध जहाँ ज्ञान तथा उसकी उपलब्धि के स्रोत से है वहीं नैतिक मूल्यों से भी जुड़ा है। मनुष्य विश्व के मूल तत्त्व को जान सकता है, उस पर अंकुश रख सकता है, सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है तथा अपना उत्कर्ष एवं उन्नयन करने में समर्थ है। परंतु मनुष्य की ये उपलब्धियाँ निर्विघ्न रूप में चरितार्थ नहीं होतीं। उसे पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है।

जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन का मानव विज्ञान पर एक विशिष्ट दृष्टिकोण था। उन्होंने *द ओरिजिन ऑफ स्पेसीज* में मनुष्य की अवधारणा को नए रूप में व्याख्यायित किया था। चार्ल्स डार्विन अपने समय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस से प्रभावित थे। माल्थस का मानना था कि मनुष्य की प्रजनन की गति ज्यामितीय होती है अर्थात् दिन-दूनी-रात-चौगुनी बढ़ती है जबकि जीवन के संसाधनों का उत्पादन अंकगणितीय होता है अर्थात् धीमी गति से होता है। इससे मनुष्य और उपलब्ध संसाधनों के बीच एक असंतुलन पैदा होता है जिससे अभाव, महामारी, दुर्भिक्ष जैसी आपदाओं से बहुत लोग मर जाते हैं। डार्विन कहता है कि जीवन के लिए उपलब्ध सुविधाओं और संसाधनों को पाने के लिए विभिन्न प्रजातियों के असंख्य जीवों में होड़ रहती है और उसमें वे प्रजातियाँ जीवित बचती हैं जो अपने को उपलब्ध परिस्थितियों के अनुकूल बना लेती है। शेष प्रजातियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार अस्तित्व के लिए संघर्ष के क्रम में जो नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती

हैं उनसे सामंजस्य बनाने के लिए प्रत्येक प्रजाति अपने अंदर विशेष गुण और व्यवहार विकसित करती है। जो प्रजातियाँ सामंजस्य बना लेती हैं उनका अस्तित्व कायम रहता है अन्य विनष्ट हो जाती हैं। इसी को डार्विन ने अस्तित्व के लिए संघर्ष कहा था। डार्विन ने 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' वाक्यांश का प्रयोग व्यापक एवं लाक्षणिक अर्थ में किया था। इसमें एक जीव का दूसरे पर निर्भरता का भाव शामिल है। यह केवल मनुष्यों के जीवित रहने का ही भाव नहीं देता बल्कि इसमें अपने पीछे संततियाँ छोड़ जाने की सफलता भी सम्मिलित है। समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर ने इसी को 'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' कहा था। उनका मानना था कि संघर्ष में वे ही प्रजातियाँ बचेंगी जो परिस्थिति के हिसाब से सर्वाधिक फिट अर्थात् अनुकूल होंगी। प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक टी.एच. हक्सले ने अपने लेख *अस्तित्व के लिए संघर्ष* में कहा था कि मानव और पशु के जीवन में क्रम में कोई भी नैतिकता भेड़िया या हिरण से अलग तरह की नहीं दिखाई पड़ती। इन जीवों की भाँति आदिम मनुष्यों में भी कमजोर, आलसी और बुद्धिमान विनष्ट हो गए। चालाक और बलशाली जो स्थितियों का मुकाबला करने में सक्षम थे किंतु अन्य किसी अर्थ में बेहतर नहीं थे, बचे रह गए। कालांतर में हक्सले ने अपने निबंध *इवोल्यूशन एण्ड एथिक्स* में अपने पूर्व विचार का खंडन करते हुए कहा कि जिसे प्रायः समाज में अस्तित्व के लिए संघर्ष कहा जाता है वह वास्तव में अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं है, बल्कि आनंद प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा है। वर्ष 1902 में पीटर क्रोपोटकिन ने अपनी पुस्तक *म्युच्युल एड* में मनुष्य के व्यवहार को एक नया आयाम दिया। उन्होंने मनुष्यों के अस्तित्व के लिए पारस्परिक सहयोग को मुख्य कारक माना। उत्तरी-पूर्वी साइबेरिया के हिम प्रदेशों का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि वहाँ जीवन-रक्षा अत्यंत कठिन काम था, लेकिन वहाँ के लोग एक दूसरे को मिटाने में

नहीं लगे थे बल्कि आपसी सहयोग से जीवन रक्षा कर रहे थे। उनका मानना था कि मनुष्य की मूल प्रवृत्ति दया और सहयोग ही है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वह प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया में बचा रह पाया और नयी जीवन शैली का निर्माण किया।

बाद में अनेक जीव वैज्ञानिकों ने मनुष्यों में सहयोग की भावना सबंधी मूल प्रवृत्ति के होने की पुष्टि की। जीव विज्ञानी डब्लू.सी.एली ने अपने लेख में कहा है कि मनुष्य में सहयोग और उसके विपरीत भावना साथ-साथ रहती है। प्रकृति में स्वार्थ और परार्थ दोनों प्रकार की भावनाएँ काम करती हैं और दोनों महत्वपूर्ण हैं। लेकिन सहयोग और परोपकार की प्रवृत्ति अधिक ताकतवर होती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा चारों तरफ फैल गई। व्यक्ति और समाज में नए प्रकार का बदलाव होने लगा। नई–नई बीमारियाँ अस्तित्व में आईं। एड्स, कैंसर, ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों से बहुतायत लोगों की मृत्यु होने लगी। मनुष्य और प्रकृति में निरंतर संघर्ष चल रहा है। इस संघर्ष में केवल उन्हीं का अस्तित्व बचेगा जो अपने आपको वर्तमान वातावरण के पूर्णतया अनुरूप बना.लेंगे। वर्ष 1971 में बी. एफ. स्किन्नर ने अपनी पुस्तक *बियॉड फ्रीडम एंड डिग्निटी* में कहा कि मनुष्य पूरी तरह परिस्थितिजन्य है। उसका वातावरण मानव द्वारा गढ़ा हुआ होता है। उसी के अनुसार उसका विकास होता है। यह धारणा इस बात को इंगित करती है कि मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक अपने विवेक से निर्णय नहीं कर सकता। परिस्थितियाँ उसके मूल स्वभाव, सहयोग और सहकार पर हावी रहती हैं। वह परिवेश से प्रभावित होकर अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए दूसरों से युद्ध करता है। मनुष्य को इन हिंसक प्रवृत्तियों से बचाया जा सकता है। उसके सामने मानव की उन महान कृतियों को रखना चाहिए जिसे उसने परस्पर संहयोग से बनाया है।

मनुष्य की अवधारणा के संबंध में वर्तमान में एक नई विचाराधारा का उदय हुआ है जो मनुष्य की मानसिकता और विवेक को अत्यंत सीमित स्थान देता है। एडवर्ड ओ विल्सन ने इसे सोशियो-बायलॉजी की संज्ञा प्रदान की है। उन्होंने चीटियों, दीमकों, मधुमक्खियों का उदाहरण देते हुए कहा कि जिस प्रकार इन जीवों में कामों का बँटवारा अविभाज्य रहता है। उसी प्रकार आधुनिक समाज के व्यक्ति के पास समाज को नियंत्रित करने वाली शक्तियों के सामने हताश होकर यांत्रिक ढंग से व्यवस्था द्वारा निर्धारित खाँचे में अपने को फिट करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।

विश्व असीम और अनंत है। मनुष्य की महत्वाकांक्षा जितनी ऊँची होती है, उसके भाग्य में दुख भी उतना ही घोर व भयंकर होता है। विज्ञान ने मनुष्य के संबंध में विचार करना कभी आवश्यक नहीं माना। वह जड़ पदार्थों, रासायनिक प्रक्रियाओं और ग्रह-नक्षत्रों में ही उलझा रहा। अब तक विज्ञान ने जो अविष्कार किए उनका सम्मिलित परिणाम मनुष्य के लिए घातक ही सिद्ध हुआ है। विज्ञान ने बड़े-बड़े संहारक अस्त्र-शस्त्र के निर्माण किए। महायुद्ध में इनके प्रयोग से यही बात सिद्ध होती है कि मनुष्य एक अत्यंत क्षुद्र प्राणी है। उसके जीवन का मूल्य, कीड़े-मकोड़े के मूल्य के ही बराबर है। वैज्ञानिक आविष्कार के उपरांत स्थापित विशालकाय औद्योगिक संगठनों ने बहुजन समाज के जीवन को अत्यधिक अस्त-व्यस्त किया। किसी तरह इस प्रतिकूल परिस्थिति से मनुष्य उबर ही रहा था कि नई महाजनी सभ्यता ने उसे धर दबोचा। बड़ी-बड़ी शानदार कारें, अच्छे भवनों, विशाल व्यक्तिगत संपत्ति जुटाने की होड़ तथा किश्तों पर खरीदी गई वस्तुओं को एकत्रित करने में व्यक्ति रात-दिन लिप्त है। भौतिक संपन्नता की ललक से सामान्य मनुष्य बेहाल है। मनुष्य एक अज्ञात जीवन बिता रहा है। उसकी क्रिया-भूमि यही संसार है। वह

एक काम-वासना या बुभुक्षा को लेकर संसार में जन्म लेता है। वह जैसा चाहता है वैसा हो नहीं पा रहा है। विज्ञापनजन्य वातावरण द्वारा उसकी संस्कृति और विकास की दिशा को निर्धारित किया जा रहा है। इन्हीं कारणों से मनुष्य अपने आप को मशीन के पुर्जे की भांति क्षुद्र, जड़ और परतंत्र मानने लगा है। उसमें स्वायत्तता और मानवीयता का लोप हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक सभ्यता के विकास से लेकर महाजनी सभ्यता तक मनुष्य की हैसियत में गिरावट आई है। विकृतियों का दौर गुजर रहा है, हर मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए बाकी मनुष्यों से अनवरत युद्धरत है। अगर स्थिति यही रही तो भविष्य में हम दुनिया में टिक सकेंगे या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर दे पाना कठिन होगा।

नैतिकता के दृष्टिकोण से मनुष्य के चरित्र के दो पहलू हैं— सकारात्मक और नकारात्मक। मनुष्य जब सत्य, ईमानदारी, निष्पक्षता और सेवा-भाव से कार्य करता है तो वह समाज में प्रशंसनीय माना जाता है। परंतु जब वह मानवीय मूल्यों से हटकर कार्य करता है तो उसका स्वभाव अहंकार, क्रोध और घमंड मे बदल जाता है। वह आक्रामक, उत्तेजक, बर्बर और क्रूर हो जाता है। मनुष्य की इस नकारात्मक सोच को बदलने की आवश्यकता है। इसके लिए सबको नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा।

भारतीय संस्कृति में न तो मनुष्य की उपेक्षा की गई है न ही उसका अनावश्यक गुणगान किया गया है। मनुष्य के विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय धारणाएँ समान नहीं रही हैं। पश्चिम में मनुष्य के शरीर और मन से पृथक् आत्मा की कल्पना नहीं की गई है। ईसाई अध्यात्मविद्या में भी मन को आत्मा से पृथक नहीं किया जाता है। पश्चिमी मनुष्य मनोमय, बौद्धिक प्राणी है और इसी स्तर पर शरीर से

उत्कृष्ट अपने स्वरूप की उपलब्धि करता है। उसका मानववाद, भोगवाद से प्रारंभ होकर बुद्धिवाद में परिणत होता है। भारतीय दृष्टि में यह समस्त विस्तार उपाधि युक्त आत्मा (मनुष्य) के कर्म और भोग का क्षेत्र है। मनुष्य का बंधन अनादि होते हुए भी चरम नहीं है। मुक्ति संभव है और परमार्थ है। इस मोक्षयुक्त मनुष्य की अभिव्यक्ति चार पुरुषार्थों की व्यवस्था में सुविदित है। जड़वादी दार्शनिक बर्टेण्ड रसेल अपने निबंध *ए फ्री मैन्स वर्शिप* में कहते हैं कि मनुष्य, नश्वर, क्षुद्र, जड़ आदि हुआ तो क्या हुआ, जब वह अपने को अमर, स्वतंत्र समझने लगता है तभी वह नियति से छुटकारा पाता है। मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान से बहुत कुछ प्राप्त करने की कोशिश की और कुछ हद तक वह उसमें सफल भी रहा। परंतु आत्म ज्ञान की कमी के कारण उसने अपने आपको प्राप्त नहीं किया। मानवता और इंसानियत में वह पिछड़ गया।

शंकराचार्य ने मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व तथा महापुरुष संश्रय को अति दुर्लभ पदार्थ के रूप में वर्णन किया है। इन तीनों में मनुष्यत्व की प्रधानता है क्योंकि बिना मानव शरीर प्राप्त हुए मुक्ति तथा सद्गुरु का आश्रय प्राप्त नहीं किया जा सकता। चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है। स्वेदज, उद्भिज और जरायुज इन त्रिविध प्राणियों में जिस प्रकार जरायुज श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार जरायुजों में मनुष्य श्रेष्ठ होता है। मनुष्य में जिस प्रकार बाल्यकाल, यौवन काल और वार्धक्य का क्रमिक विकास होता है उसी प्रकार एक जीवनधारा क्रमशः निम्न कोटि के जीव से आरंभ होकर उत्कृष्ट जीव जाति तक अभिव्यक्त होती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार विकास के पथ पर सर्वप्रथम अन्नमय कोष का विकास होता है। पृथ्वीलोक में जितने भी प्राणी निवास करते हैं वे सभी अन्न से उत्पन्न हुए हैं। अन्नमय कोष से बने स्थूल शरीर

के भीतर एक और शरीर है जिसे प्राणमय कोष कहा जाता है। प्राणमय कोष के विकास के फलस्वरूप क्रमशः अति जटिल प्राण चक्रों की अभिव्यक्ति होती है और एक समय ऐसा आ जाता है कि प्राणमय कोष मनोमय कोष में बदल जाता है। मनोमय कोष का पूर्ण विकास ही मानव शरीर की उत्पत्ति है। इस प्रकार अन्नमय कोष से मनोमय कोष तक चौरासी लाख योनियों की परिसमाप्ति होती है।

मनुष्य, शरीरधारी होकर प्रकृति के अधीन शुभ-अशुभ कर्म करता रहता है और तदनुसार फल प्राप्त करता रहता है। कर्मानुसार असंख्य जन्म बीत जाते हैं। उसे विभिन्न प्रकार के शरीर ग्रहण करना पड़ता है। शुभ कर्मों से ऊर्ध्वलोक में गति होती है और देवताओं का शरीर प्राप्त होता है। अशुभ कर्मों से अधोलोक की गति होती है, मनुष्य पशु आदि निम्न योनियों में जन्म लेना होता है। मिश्र कर्म करने से मनुष्य को पुनः मनुष्य योनि में ही लौटना पड़ता है।

महात्मा गांधी ने शुभ कर्मों के लिए मनुष्य को 11 प्रकार के गुणों के अनुसार आचरण करने का सुझाव दिया है। ये हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, स्पर्शभावना (सामाजिक समानता)। विनोबा भावे ने इसमें नम्रता और दृढ़ता का और समावेश किया है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में ऐसे 26 गुणों का वर्णन किया गया है जिन्हें अपना कर मनुष्य अपना पूर्ण विकास कर सकता है। ये हैं – (1) अभय, (2) सत्व संशुद्धि अर्थात सत्व गुण में से सुखासक्ति रूपी अशुद्धता को त्याग देना, (3) ज्ञानपूर्वक कर्म करने की स्थिति, (4) दान, (5) दम अर्थात् इन्द्रिय दमन, (6) यज्ञ अर्थात् कर्त्तव्य निष्ठा, (7) स्वाध्याय, (8) तप, (9) आर्जव अर्थात् अकपट बर्ताव, (10) अहिंसा, (11) सत्य, (12) अक्रोध, (13) त्याग, (14) शांति, (15) अपैशुन्य अर्थात् किसी की निन्दा या चुगली न करना, (16) भूतदया, (17) अलोलुपत्व अर्थात लोभ न होना,

(18) मार्दव अर्थात दूसरों के दुःख से दुखी होना, (19) ह्री अर्थात अनुचित आचरण में लज्जा, (20) अचापल (चंचल न होना), (21) तेज, (22) क्षमा, (23) धृति या धैर्य, (24) शौच, (शरीर और मन की शुद्धि), (25) अदोह और (26) नातिमानता अर्थात् नम्रता। सभी मनुष्यों को मनुष्य बनने के लिए उक्त गुणों की आवश्यकता है। यदि मानवता और इंसानियत को विनाश से बचाना है तो मनुष्य को इन गुणों को अमल में लाना होगा। आर्नल्ड टायनबी का कथन है कि "हमारा युग न तो अपने भयानक अपराधों के लिए याद किया जाएगा और न आश्चर्यजनक आविष्कारों के लिए, बल्कि पाँच-छह हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के उदय के बाद से ऐसा प्रथम युग होने के लिए याद किया जाएगा जिसमें लोगों ने सभ्यता के लाभों से सारी मानव जाति को लाभान्वित करने का साहस किया है।"

मानव जाति ऐसे उच्च आदर्शों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है जिसकी बुनियादं में पारस्परिक विश्वास निहित है। इसी विश्वास से समाज का निर्माण होता है। यद्यपि औद्योगीकरण, जनसंख्या का भारी दबाव, परमाणु बम, तानाशाह बनने की घातक महत्त्वाकांक्षा, कॉरपोरेट वैश्वीकरण और धन की भयानक लोलुपता के आगे अक्सर यह बुनियादी नैतिक भावना दब जाती है। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज भी यह भावना विद्यमान है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व कायम है, वह राक्षस नहीं हुआ।

❏❏❏

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण एक सतत प्रक्रिया

डॉ. दिनेश मणि

किसी भी देश के बहुमुखी विकास में वहाँ के वैज्ञानिक साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों से संबंधित साहित्य को सरल एवं सुबोध शैली में उपलब्ध कराना एक पुनीत दायित्व है। समय-समय पर विभिन्न लेखकों तथा वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के विकास एवं वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व आयुर्वेद, ज्योतिष तथा दर्शन आदि से संबंधित प्रचुर शब्दावली प्रचलन में थी। इसे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भली प्रकार समझा जाता था। पिछली शताब्दी में जब पश्चिम के देशों में आधुनिक वैज्ञानिक विचारों और आविष्कारों का सूत्रपात हुआ तो वहाँ पारिभाषिक शब्दावली का तेजी से विकास हुआ। तब भारत के विद्वानों ने भी इस शब्दावली को भारतीय भाषाओं में रूपांतरित करने की आवश्यकता अनुभव की।

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली पर चिंतन-मनन उन्नीसवीं शताब्दी में ही प्रारंभ हो गया था। सन् 1871 में बंगाल सरकार ने एक समिति गठित की जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं में उपयुक्त पुस्तकें तैयार करने के तरीकों पर विचार करना था। इस समिति के एक सदस्य राजेन्द्र लाल मित्रा ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने के विषय पर एक निबंध प्रस्तुत किया जिसमें पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के संबंध में कई सिद्धांतों का विवेचन किया गया है।

सन् 1888 में गुजराती के क्षेत्र में प्रो. टी.के. गज्जर ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया। हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली की परंपरा सन् 1898 से शुरू होती है जब काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय बनाने के लिए एक समिति की स्थापना की। अनेक विद्वानों के सहयोग से सन् 1906 में कई विषयों की शब्दावली प्रकाशित की गई। सभा के तत्वावधान में कुल मिलाकर लगभग 10,000 अंग्रेजी शब्दों के हिंदी पर्यायों का निर्माण किया गया।

सन् 1925 से 1950 की अवधि के बीच वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के प्रति लोगों की रुचि में तेजी से वृद्धि हुई और कई उल्लेखनीय पारिभाषिक शब्द-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें सुख संपतराय भण्डारी, पोपट लाल शाह, दाते कर्वे तथा डॉ. रघुवीर के शब्दकोश उल्लेखनीय हैं।

पारिभाषिक शब्दावली के बारे में व्यक्तिगत प्रयासों में डॉ. रघुवीर का नाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सन् 1948-49 में डॉ. रघुवीर द्वारा संपादित एक बृहत् अंग्रेजी-हिंदी पारिभाषिक कोश प्रकाशित हुआ। इसके पहले इतने व्यापक स्तर पर शब्दावली संबंधी चिंतन नहीं हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में शब्दावली निर्माण के कार्य में तेजी

आई और कई प्रांतों में अपनी-अपनी भाषाओं में शब्दावली निर्माण करने का कार्य शुरू किया गया। हिंदी क्षेत्र में हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण के उद्देश्य को लेकर भारत सरकार ने सन् 1950 में एक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की और फिर सन् 1961 में इसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का रूप दे दिया गया। आयोग ने आरंभ से ही ऐसी शब्दावली के निर्माण पर बल दिया जो थोड़े संशोधन के बाद हमारी विभिन्न भारतीय भाषाओं की प्रगति के अनुरूप ढाली जा सके और अखिल भारतीय स्तर पर व्यवहार में लाई जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आयोग ने विभिन्न विषयों की शब्दावली को अंतिम रूप देने के लिए विशेष सलाहकार समितियों का गठन करते समय इस बात का ध्यान रखा कि इनमें देश के सभी क्षेत्रों के विषय-विशेषज्ञों, अध्यापकों, शिक्षाविदों और भाषाविदों का प्रतिनिधित्व रहे। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्वावधान में उपलब्ध शब्दावली की समीक्षा करने के बाद कुछ सिद्धांत निर्धारित किए गए जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :–

अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं –

– तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन, कार्बन डाईऑक्साइड आदि।
– तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे एम्पियर, डाइन, कैलोरी आदि।
– ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे

फारेन्हाइट के नाम पर फारेन्हाइट तापक्रम, वोल्टा के नाम पर वोल्टामीटर और एम्पियर के नाम पर एम्पियर आदि।

- वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भू-विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।
- हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधारविरोधी और विशुद्धिवादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :–

- अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों।
- संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।
- ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग में वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टेलीग्राफ/टेलीग्राम के लिए तार, एटम के लिए परमाणु आदि। ये सब इसी रूप में व्यवहार किए जाने चाहिए।

नई शिक्षा नीति (1986) के व्यावहारिक कार्यक्रम के तहत विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम परिवर्तन के संदर्भ में शब्दावली आयोग को अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी गई थी और इस दिशा में निम्नलिखित चार कार्यक्रमों का निर्धारण किया गया है –

अ. भारतीय भाषाओं में अब तक तैयार किए गए कार्य की तुलना में अब और बड़े पैमाने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक सामग्री, संदर्भ-ग्रंथों, संपूरक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन।

ब. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास।

स. अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों, संदर्भ-ग्रंथों

तथा संपूरक साहित्य का अनुवाद।

द. इन शैक्षिक कार्यक्रमों का नियमित पुनरीक्षण तथा मॉनीटरन मानक।

आयोग द्वारा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से लेकर मानविकी और सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों से संबंधित 5 लाख से अधिक पर्याय उपलब्ध कराए जा चुके हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि हमारी शब्दावली संबंधी बहस पारिभाषिक शब्दों के सही-गलत या सरल-कठिन पहलू तक ही सीमित रह जाती है। हम शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास नहीं करते और इस तरह व्यर्थ की उलझन में फँस जाते हैं। पारिभाषिक शब्दावली पर टीका-टिप्पणी करने वाले अधिकांश लोग यह जानने का भी प्रयास नहीं करते कि पारिभाषिक शब्द किसे कहते हैं? उनकी क्या विशेषताएँ हैं? वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली पर किसी प्रकार का विचार-विमर्श करने से पहले हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पारिभाषिक शब्द से हमारा क्या अभिप्राय है। एक कोशकार ने पारिभाषिक शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है–

"पारिभाषिक शब्द वह शब्द या अभिव्यक्ति है जो मनुष्य की विशिष्ट गतिविधियों या मानव प्रकृति के किसी विशेष पहलू से संबंधित ज्ञान–विज्ञान की शाखा के विद्वान के लिए विशेष महत्व रखता है। पारिभाषिक शब्द वास्तव में विशेषज्ञों द्वारा अपने विचारों को ठीक-ठाक व्यक्त करने के लिए ग्रहीत-अनुकूलित या आविष्कृत प्रतीक है। प्रत्येक शब्द या अभिव्यक्ति किसी विशेष विचार या संकल्पना को व्यक्त करने की संक्षिप्त विधि है। इसे केवल तदर्थ शब्द समझना चाहिए और इसके अर्थ का सही-सही अंदाज नहीं लगाया जा सकता।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारिभाषिक शब्द भाषा के वे शब्द हैं जो ज्ञान-विज्ञान के किसी क्षेत्र में विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।

पारिभाषिक शब्दों के अर्थ तत्व को स्पष्ट करने के लिए परिभाषा या व्याख्या पर समुचित ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। ऐसे बहुत कम शब्द हैं जो इतने व्याख्यात्मक हों कि उनका अर्थ अपने आप ही समझ में आ जाए। अधिकांश पारिभाषिक शब्दों को समझने के लिए हमें उनकी टीका या व्याख्या करने की जरूरत पड़ती है। शब्दों का एक वर्ग ऐसा भी है जो पारिभाषिक अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और सामान्य अर्थों में भी। पारिभाषिक शब्दों का एक ऐसा वर्ग भी है जिन्हें आम बोलचाल में हम पर्यायवाची मानकर चलते हैं किंतु जब हम किसी विषय की गहराई में जाते हैं तो देखते हैं कि ऐसे शब्दों में सूक्ष्म अर्थभेद होता है।

स्मरण रहे, विज्ञान की अपनी भाषा होती है। इस भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों तथा गूढ़ रहस्यों को विभिन्न तकनीकी शब्दों के सहारे व्यक्त करता है, किंतु इसे ग्राह्य भाषा के रूप में रूपांतरित करने या अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। मूल भाषा से अनुवाद करने में सबसे बड़ी बाधा उस मूल भाषा की विशिष्ट शैली होती है। उस शैली के सरलीकरण में तकनीकी शब्दों की भरमार के कारण अधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं या नए शब्दों को गढ़कर उसके भाव को स्पष्ट करना होता है। ऐसे में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्द न मिलने से कठिनाई होती है। अधिकांश वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है। दूसरी भाषा में इसे यथावत् प्रस्तुत करने में भाषा एवं शब्दावली का व्यापक उपयोग होता है।

विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग किया जाता है। आम बोलचाल की भाषा में सामान्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है जब किसी तरह शब्द के अर्थ को परिसीमित कर दिया जाता है, तब वह पारिभाषिक शब्द का रूप ले लेता है। पारिभाषिक शब्दों के निर्माण हेतु निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए :–

– पारिभाषिक शब्द यथासंभव छोटा और सरल होना चाहिए।
– एक ही श्रेणी या विषयक पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता होनी चाहिए।
– पारिभाषिक शब्दों के अर्थ में अस्पष्टता, दुर्बोधता और संदिग्धता नहीं होनी चाहिए।
– पारिभाषिक शब्द में उर्वरता होनी चाहिए।
– विदेशी भाषा से अनूदित शब्दों में सार्थकता होनी चाहिए।
– एक संकल्पना के लिए एक ही शब्द होना आवश्यक है।

अठारहवीं शताब्दी के विख्यात फ्रांसीसी रसायनज्ञ ले बोजिए ने अपनी पुस्तक *विज्ञान विषयों की अभिव्यक्ति में भाषा की भूमिका* में विज्ञान के विषय में लिखा है कि सभी प्रकार के विज्ञान विषयों में तीन बातों में भेद करने की आवश्यकता है :–

1. वह तथ्यों का समूह जिनको मिलाकर विज्ञान बनता है,
2. वे विचार जिनके कारण ये उत्पन्न होते हैं और
3. वे शब्द जो इन विचारों एवं तथ्यों को व्यक्त करते हैं।

यह आवश्यक है कि शब्द विचारों को सही-सही व्यक्त करें तथा विचार तथ्यों को। तभी ये तीनों मिलकर विज्ञान का संप्रेषण कर सकते हैं।

कहना न होगा कि जैसे-जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में प्रगति होती जा रही है, वैसे-वैसे विज्ञान विषयक वाङ्मय का सृजन एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाने के कारण वैज्ञानिक अनुवाद की महत्ता बढ़ती जा रही है। वास्तव में अनुवाद की महत्ता और उपयोगिता केवल भाषा और साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वह हमारी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और कुल मिलाकर राष्ट्रीय संस्कृति का एक सशक्त माध्यम है जो भाषायी सीमाओं को पार करके भारतीय चिंतन और साहित्य की सर्जनात्मक चेतना की समरूपता के

साथ–साथ, वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी युग की अपेक्षाओं की पूर्तिकर हमारे ज्ञान–विज्ञान के नए आयामों को स्पर्श करती है।

हम जानते हैं कि हमारे देश के लगभग 10 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी भाषा के माध्यम से विज्ञान को समझने की क्षमता रखते हैं। अतः शेष 90 प्रतिशत लोगों तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की जानकारी तभी पहुँचाई जा सकती है जब हम इसे जनसामान्य की भाषा में प्रस्तुत करें।

पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दों का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया है। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं का उदय होता रहता है और उनके लिए नए शब्द भी गढ़े जाते हैं। दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए ज्ञान से लाभान्वित होने के लिए हमें समानकों का निरंतर निर्माण करते रहना होगा। इसके अतिरिक्त, हमें अब तक निर्मित शब्दावली के प्रयोग के मार्ग में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों का सर्वेक्षण करके यह मालूम करना होगा कि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का कितना अंश वस्तुतः प्रयोगकर्ताओं द्वारा स्वीकार किया जा चुका है और साहित्य में व्यवहृत हो रहा है, कितना अंश स्वीकार नहीं हुआ है और क्यों, और किस हद तक प्रयोगकर्ताओं ने हमारे शब्दों के बजाय दूसरे शब्दों का प्रयोग करना अधिक सुविधाजनक समझा है, जिन्हें अब विधिवत् मान्यता देकर हमें पारिभाषिक शब्दकोशों के परवर्ती संस्करणों में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

आज आवश्यकता इस बात की है कि पारिभाषिक शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की प्रयास किया जाए और एकांगी-दृष्टिकोण की जगह समन्वित दृष्टिकोण से शब्दावली पर विचार किया जाए। भाषा बहुआयामी व्यवस्था है। इसके अनेक पहलू हैं और केवल सरलता या सुबोधता के आधार पर तकनीकी शब्दावली का मूल्यांकन करना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

कृषि हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। आज हर चौथा भारतीय किसान है। हमारा 30 प्रतिशत जीडीपी यानी सकल घरलू उत्पाद कृषि से आता है। कृषि से प्राप्त कच्चे माल से कल-कारखाने एवं उद्योग-धंधे चलते हैं। भारतीय कृषि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक पारंपरिक ही बनी रही। इस क्षेत्र में तब तक न के बराबर साहित्य था। किसानों के बीच केवल घाघ-भड्डरी की वर्षा, खाद, खेती एवं पशुओं के लक्षणों से संबंधित कहावतें मान्यता पाती रहीं किंतु कोई लिखित साहित्य न था। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में विज्ञान की सर्वतोन्मुखी उन्नति के साथ ही कृषिविज्ञान के क्षेत्र में लोकोपयोगी साहित्य की आवश्यकता महसूस होने लगी और कृषि विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। यद्यपि आरंभ में हिंदी में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण लेखकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु उनके द्वारा किए गए प्रयास निश्चित ही प्रशंसनीय हैं। यह उल्लेखनीय है कि सन् 1900 तक हिंदी में केवल 11 पुस्तकें कृषिविज्ञान से संबंधित थीं, जिनमें सबसे प्राचीन 1856 की है (*कृषि कौमुदी*, 1856, लाल प्रताप सिंह, मुंबई)। बीसवीं शताब्दी आरंभ होते ही कृषि के क्षेत्र में जो क्रांति आई उसके फलस्वरूप कृषि की तकनीकी पुस्तकें अनिवार्य लगने लगीं क्योंकि विभिन्न खोजों को किसानों तक पहुँचाने तथा कृषि प्रसार एवं प्रशिक्षण की दृष्टि से पुस्तकों का प्रणयन आवश्यक हो गया।

हमारे देश में प्रारंभ में कृषिविज्ञान के पठन-पाठन का माध्यम अंग्रेजी ही रहा अतः उच्च शिक्षा का लाभ खेतिहर किसानों तक दशकों तक नहीं पहुँच पाया। फलतः कृषि साहित्यकारों के समक्ष चुनौती थी कि वे हिंदी के माध्यम से जन-जन तक वैज्ञानिक उपलब्धियों को पहुंचाएँ।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि विज्ञान / कृषि विज्ञान के क्षेत्र में देश का बहुमुखी विकास तभी संभव है जब

विज्ञान/कृषिविज्ञान के गूढ़ विषयों से संबंधित साहित्य सरल एवं सुबोध भाषा में उपलब्ध हो। शब्दों के चयन/निर्माण के समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि वे सुस्पष्ट तथा असंदिग्ध अर्थ रखते हों। कभी-कभी इस भूल की संभावना रहती है कि एक ही शब्द एकाधिक अर्थों में प्रयुक्त हो और संदर्भ में कौन-सा अर्थ उद्दिष्ट है, यह स्पष्ट न हो। काव्य में निष्कर्ष के अनेक रूप संभव हैं किंतु विज्ञान के निष्कर्ष की परिणति केवल एक ही होती है, जो वैज्ञानिक और पाठक के लिए समान होती है। विज्ञान की भाषा को यह शक्ति विज्ञान की शब्दावली प्रदान करती है।

ध्यान रहे, पारिभाषिक शब्दावली का एक घटक क्षेत्रीय स्तर पर प्रचलित शब्दावली भी है। ये वे शब्द हैं जिन्हें छोटे–छोटे कारीगर, किसान, मिस्त्री आदि लोग अपने दैनंदिन व्यवहार में लाते हैं अथवा जो स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में व्यवहृत होते हैं। सामान्य जन भी इन शब्दों को प्रायः प्रयोग में लाती है। हिंदी में लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई, क्षेत्रफल आदि शब्द इसी कोटि के हैं। इन शब्दों को प्राथमिकता दी गई और इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा एवं शोध पर विशेष बल दिया गया। कृषि के क्षेत्र में काम करने वाले तथा शिक्षण संस्थाओं से संबंधित अनेक विद्वान हिंदी में कृषि विज्ञान साहित्य सृजन करने का औचित्य समझते हुए अहर्निश सृजनकार्य में संलग्न हैं और कृषि विज्ञान की नवीनतम शाखाओं-प्रशाखाओं से संबंधित विज्ञान की मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। आयोग के द्वारा अनेक पारिभाषिक शब्दावलियाँ भी तैयार की जा चुकी हैं और कई तैयार हो रही हैं।

कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आज जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता ली जा रही है। हरित क्रांति (खाद्यान), बासंती क्रांति (तिलहन), गुलाबी क्रांति (फल, सब्जी), श्वेत क्रांति (दूध, डेयरी तथा अंडा) तथा नीली क्रांति (मछली) के पश्चात् आज इंद्रधनुषी (सतरंगी)

क्रांति लाने के लिए कृषि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में व्यापक पैमाने पर शोध कार्य किए जा रहे हैं। कृषि-विविधीकरण की संकल्पना मूर्त रूप ले रही है। ऐसे में कृषि विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता के माध्यम से समाचार पत्र, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के माध्यम से जनसामान्य को नए तकनीकी शब्दों से परिचित कराना अनिवार्य है। इसके लिए कृषि साहित्य के अनुवाद, संपादन तथा प्रकाशन में कार्यरत व्यक्तियों को भी अनुवाद-कला, संपादन तथा प्रकाशन प्रौद्योगिकी से परिचित कराना आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् तथा कृषि मंत्रालय के विस्तार निदेशालय के सहयोग से यह कार्य किया जा सकता है। विभिन्न कृषि विश्व-विद्यालयों की भी सहायता ली जा सकती है। कृषि विश्वकोश के निर्माण की आवश्यकता है जिसमें सभी विषयों के तकनीकी शब्दों की परिभाषाएँ सचित्र रूप से प्रकाशित की जाएँ।

हिंदी में कृषि विज्ञान साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, दि फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, विभिन्न राज्य सरकारों तथा अनेक गैर–सरकारी संगठनों द्वारा पुरस्कार देने की भी व्यवस्था है। इन योजनाओं से निश्चय ही कृषि विज्ञान साहित्यकारों का उत्साहवर्धन हुआ है। निकट भविष्य में अनेक नवोदित लेखकों द्वारा कृषि विज्ञान विषयक साहित्य सृजन करने की प्रबल अपेक्षा है।

❑❑❑

वाणिज्य शब्दावली – एक प्रस्तुति

सतीश चन्द्र सक्सेना

देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और अधिकांश महाविद्यालयों में विज्ञान, कला अैर विधि संकायों की भाँति, वाणिज्य संकाय अथवा विभाग होते हैं जहाँ वाणिज्य विषयों का स्नातक स्तर और स्नातकोत्तर स्तर पर अध्ययन, अध्यापन तथा शोधकार्य होता है। वाणिज्य के अंतर्गत लेखा विज्ञान (accountancy), बहीखाता लेखन (Book Keeping), व्यावसायिक विधियाँ (Business Methods) आदि विषयों का अध्ययन होता है। कंप्यूटरीकरण हो जाने से पेपर वर्क तो कम हो गया है परंतु मूलतः विधियों और पद्धतियों में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। समय की मांग के आधार पर इन संकायों में छात्रों की संख्या घटती–बढ़ती है। अंततः छात्रों का उद्देश्य यही होता है कि विषय इस प्रकार चुने जाएँ जो उनके भावी कैरियर के निर्माण में सहायक हो। आई.सी.डब्ल्यू.ए. और चार्टरित लेखाकार की प्रवेश परीक्षा देने वालों में वाणिज्य स्नातकों को वरीयता मिलती है। इसके अतिरिक्त बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप नई–नई कंपनियों का खुलना, बैंकिंग सेवा का विस्तार तथा अधिकाधिक बैंकों की नई शाखाओं की खुलना, रोजगार की दृष्टि से वाणिज्य स्नातकों के लिए

शुभ संकेत है। कंपनियों में आंतरिक लेखा परीक्षा का प्रावधान हो जाने के कारण और नए-नए चार्टरित लेखाकारों के कार्यालय खुलने से लेखा परीक्षकों की मांग में भी अच्छी वृद्धि हुई है।

आई.सी.डब्ल्यू.ए. और चार्टरित लेखाकार की परीक्षा में सफल और भाग्यशाली प्रत्याशियों के लिए एक स्वर्णिम कैरियर का मार्ग प्रशस्त होता है। इनमें कुछ संपन्न लोग ख्याति प्राप्त लेखाकार कंपनियों में साझेदारी के आधार पर अथवा अच्छे वेतन पर अपने कैरियर का शुभारंभ करते हैं। कालांतर में अधिकतर ऐसे व्यक्ति अपना निजी व्यवसाय भी शुरू कर लेते हैं। इन्हीं सब कारणों से पिछले कुछ वर्षों से विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर वाणिज्य का अध्ययन एक पसंदीदा विषय बन गया है और प्रवेश के लिए अच्छी-खासी प्रतिस्पर्धा रहती है।

प्रत्येक विषय की शब्दावली में विशेषता होती है और इसमें निहित संकल्पना के आधार पर सामान्य अथवा तकनीकी शब्दों का भिन्न अर्थ होता है। इस कारण उनके पर्यायों का भिन्न होना भी स्वाभाविक है। वाणिज्य शब्दावली के अंतर्गत लेखा विज्ञान, बहीखाता लेखन, व्यावसायिक विधियों के अतिरिक्त, बैकिंग, शेयर और पूंजी बाजार आदि की शब्दावली का भी समावेश होता है। प्रस्तुत लेख में उपर्युक्त विषयों की शब्दावली से संबंधित सामान्य शब्दों के संदर्भ में एक संक्षिप्त सोदाहरण विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

Trade और Commerce शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग होता है। दोनों शब्दों में समानता होते हुए भी पर्याप्त भिन्नता है जैसा कि निम्नलिखित शब्दों/संयोजनों से स्पष्ट होता है :–

trade	1. व्यापार 2. व्यवसाय
trade agency	व्यापार अभिकरण
trade agreement	व्यापार अनुबंध, व्यापार करार

trade discount	व्यापार छूट (बट्टा)
trade delegation	व्यापार प्रतिनिधि मंडल
trader	व्यापारी
trade practice	व्यापार पद्धति

दूसरे पर्याय 'व्यवसाय' शब्द का प्रयोग profession के लिए भी होता है।

commerce वाणिज्य के निम्नलिखित पर्याय होते हैं :–

commercial	वाणिज्यिक
commercial account	वाणिज्यिक लेखा
commercial complex	वाणिज्यिक परिसर
commercial hub	वाणिज्यिक केंद्र
commercial wing	वाणिज्यिक स्कंध
commercial scale	वाणिज्यिक पैमाने पर (बड़े पैमाने पर)

account शब्द के निम्नलिखित पर्याय होते है :–

1. लेखा
2. खाता (बचत खाता व चालू खाता आदि)
3. हिसाब (उदहारण, हिसाब लिखना, हिसाब मिलाना आदि)

dead account	निष्क्रिय लेखा
accountant	लेखाकार
accountant general	महालेखाकार
audit	लेखा परीक्षा;
personnel audit	कार्मिक लेखा परीक्षा
audit in depth	गहन लेखा परीक्षा
auditor	लेखा परीक्षक

auditor general	महालेखा परीक्षक
accountability	जबावदेही
तुलना : responsibility	उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी
account book	लेखा बही
account code	लेखा संहिता
account head	लेखा शीर्ष
accounting	लेखाकरण
accounting policy	लेखाकरण नीति
accountancy	1. लेखाविधि 2. लेखा विज्ञान
account keeping	लेखापालन
account for	1. हिसाब देना 2. कारण बताना
accounting arrangement	लेखाकरण व्यवस्था
account return	लेखा विवरणी
तुलना : tax return	कर विवरणी
accounts payable	देनदारी लेखे
accounts receivable	लेनदारी लेखे
accounts structure	लेखा संरचना
book	1. पुस्तक 2. खाता 3. बही
book value	खाता मूल्य, अंकित मूल्य
book keeper	बही लेखक, मुनीम
book keeping	1. बहीखाता लेखन 2 बहीखाता पद्धति
books of original entry	मूलप्रविष्टि की बहियाँ
book transactions	खाता लेन-देन
book transfer	खाता अंतरण

सभी उद्योगों और व्यवसायों के लिए बैंक, मेरुदंड की भांति हैं और एक भी दिन बैंक के बिना काम नहीं चल सकता। बैंकिंग कार्य कलाप से संबंधित कुछ शब्दों का अवलोकन कीजिए :–

bank rate	बैंक दर
bank balance	बैंक शेष
bank draft	बैंक ड्राफ्ट
bank book	बैंक पुस्तिका
bank cash	बैंक नकदी, बैंक रोकड़
bank charges	बैंक प्रभार
bank reserve	बैंक रिजर्व, बैंक आरक्षित
bankrupt insolvent	दिवालिया अर्थात्
bankrupting	दिवाला, दिवालियापन
bank credit	1. बैंक उधार 2. बैंक साख
banking	बैकिंग, बैंककारी
bank guarantee	बैंक गारंटी, बैंक प्रत्याभूति
bank reconciliation	बैंक समाधान
bank transaction	1. बैंक कार्य व्यवहार 2. बैंक लेन देन

इसका विलोम शब्द solvent होगा जिसका पर्याय है 'शोधन क्षमता' अर्थात् 'भुगतान करने की क्षमता'

bank bill	बैंक बिल, बैंक हुंडी यहाँ bill शब्द का अर्थ सामान्य अर्थ से भिन्न है।
bargain	1. सौदा 2. रियायती सौदा दोनों पर्यायों में अर्थ भेद है।

bargain counter	रियायती सौदा पटल
bargaining	सौदेबाजी, सौदाकारी
bargaining right	सौदा अधिकार
bargaining power	सौदा शक्ति
bargaining collective	सामूहिक सौदेबाजी
bargain money	बयाना, साई यहाँ bargain का बिल्कुल भिन्न अर्थ है।

balance शब्द के विभिन्न संदर्भों में कई पर्याय हैं। यथा :

balance	1. शेष 2. बाकी 3. संतुलन
balance brought down	अधोनीत शेष (अधो=नीचे; नीत=लाया गया)
balance sheet	तुलन पत्र
balance budget	संतुलित बजट
liability side	देयता पक्ष
तुलना : asset side	परिसम्पत्ति पक्ष

capital शब्द के भी विभिन्न संदर्भों में भिन्न पर्याय है। जो स्वत: स्पष्ट हैं। यथा :–

capital	1. पूंजी 2. मूलधन 3. राजधानी

capital शब्द से निर्मित कुछ शब्द संयोजन इस प्रकार है :–

capital account	पूंजीगत लेखा
capital expenditure	पूंजीगत व्यय
capital grant	पूंजीगत अनुदान

capital investment — पूंजीगत निवेश, पूंजी निवेश
capital issue — पूंजी निर्गम
capital punishment — मृत्युदंड
यहाँ capital शब्द का बिल्कुल ही भिन्न अर्थ है।
capital receipt — पूंजीगत प्राप्ति
capital formation — पूंजी निर्माण
capital flight — पूंजी पलायन
capital reserve account — पूंजी आरक्षित लेखा
capital turnover ratio — पूंजी आवर्त अनुपात

cost का पर्याय लागत स्वीकृत है – इससे मिलते-जुलते अन्य दो शब्द value 1. मूल्य 2. मान (विज्ञान) तथा price के लिए कीमत पर्याय नियत किए गए हैं। इन शब्दों से बने कुछ शब्द संयोजन इस प्रकार हैं :–

costing — लागत निर्धारण
costing method — लागत निर्धारण विधि
cost accountant — लागत लेखाकार
cost analysis — लागत विश्लेषण
cost ceiling — लागत सीमा
cost effective — लागत प्रभावी
cost benefit analysis — लागत लाभ विश्लेषण
cost over run — लागत अतिक्रमण
cost plus — लागत और नियत लाभ
conversion cost — परिवर्तन लागत
cost accounts — लागत लेखे

cost allocation — लागत नियतन
तुलना : fund allocation = निधि नियतन
cost appreciation — लागत वृद्धि
तुलना : cost depreciation — लागत मूल्य-ह्रास
cost efficiency — लागत दक्षता
cost free deal — व्यय रहित सौदा
allowable cost — अनुमेय लागत
marginal cost — सीमांत लागत
out of pocket cost — तुरंतदेय लागत
opportunity cost — विकल्प लागत
prime cost — मूल लागत
value :- notional value — कल्पित मूल्य
notional value — अंकित मूल्य
valuable — मूल्यवान, बहुमूल्य;
valuation — मूल्यन
valuation certificate — मूल्यन प्रमाण-पत्र
valuation report — मूल्यन रिपोर्ट
valuation method — मूल्यन विधि
valuator — मूल्यक
price — कीमत
pricing — कीमत-निर्धारण
price fuctuation — कीमत उतार-चढ़ाव; कीमत घट-बढ़
price index — कीमत सूचकांक
price negotiation — कीमत संबंधी बातचीत
price variation — कीमत विभिन्नता, कीमत विचरण

assets : वाणिज्य, अर्थशास्त्र तथा बैकिंग में assets का पर्याय परिसंपत्ति है जिसके अंतर्गत सभी प्रकार की संपत्ति आती है। assets से बने कुछ महत्वपूर्ण शब्द-संयोजन इस प्रकार है :–

assets stripping	परिसंपत्ति वंचन
current assets	चालू परिसंपत्ति
fixed assets	स्थायी परिसंपत्ति
liquid assets	आभासी परिसंपत्ति
fixed assets accounts	स्थायी परिसंपत्ति लेखा
instangible assets	अगोचर परिसंपत्ति, अमूर्त परिसंपत्ति
tangible assets	गोचर परिसंपत्ति; मूर्त परिसंपत्ति

credit शब्द का बहुतायत से प्रयोग होता है। इसके लिए विभिन्न संदर्भों में अलग अलग पर्याय नियत किए गए हैं :–

credit 1. ऋण, उधार 2. साख 3. जमा

इन पर्यायों से बने कुछ शब्द संयोजन इस प्रकार हैं :–

credibility	साख, विश्वसनीयता
letter of credit	साख-पत्र
credit worthiness	उधार पात्रता, साख
credit rating	साख-मान
credit advice	जमा संज्ञायन
creditor	ऋणदाता, लेनदार
creditable	प्रशंसनीय, सराहनीय (यहां संदर्भ भिन्न है)
debit	नामे; नामे डालना

debit adivce	ऋणी, देनदार
debit management	ऋण प्रबंधन
debit-equity ratio	ऋण-पूँजी अनुपात
debit instrument	ऋण प्रपत्र
debit market	ऋण बाजार
debit balance	नामे शेष

विविध शब्दावली (Miscellaneous terminology)

वाणिज्य में प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण शब्द और उनके पर्याय इस प्रकार हैं :–

amortisation	परिशोधन
advance recoverable	पेशगी वसूली योग्य
acid test	1. साख परीक्षण 2. तीक्ष्ण परीक्षण (भिन्न संदर्भ)
application blank	आवेदन फॉर्म
bad debt	अशोध्य ऋण, डूबी रकम
bid price	बोली कीमत
blank transfer	अनामी अंतरण
break even point	संतुलन स्तर बिंदु, लाभ-अलाभ बिंदु
blue collar job	कायिक कार्य
तुलनाः white collar j(	सफेदपोश नौकरी
burn out stress syndrome	बर्न आउट स्ट्रेस संलक्षण

cash	1. रोकड़, नकदी 2. भुगतान (चेक आदि)
cash balance	नकदी शेष
cash book	रोकड़ बही
cash chest	तिजोरी
cash discount	नकदी बट्टा
cash down	एकमुश्त नकद
cash flow	नकदी प्रवाह
cash in hand	हाथ रोकड़
cash memo	नकद पर्ची
cash outlay	नकदी परिव्यय
cash out flow	रोकड़ बहिर्वाह
delegation	1. प्रतिनिधि मंडल 2. प्रत्यायोजन
delegation of powers	शक्तियों का प्रत्यायोजन
deliberation	विचार-विमर्श
demand-supply position	मांग-पूर्ति स्थिति
demurrage	विलंब शुल्क, डेमरेज
dumping duty	पाटन शुल्क
तुलना : antidumping duty	प्रतिपाटन शुल्क
disclaimer opinion	अस्वीकारी मत
ego needs	अहम् आवश्यकताएँ
estimator	प्राक्कलक
fixed liability	नियत देयताएँ
floating currency	अनिविष्ट मुद्रा

floating liability	अस्थायी देयताएँ
floating rate	तिरती दर
floating debt	चल ऋण
floating liability	चलदेयता
fluidity	तरलता

floating का सामान्य अर्थ 'प्लवमान' या तैरता हुआ है परंतु इन सब संयोजनों में संदर्भ के अनुसार अलग-अलग पर्याय प्रयुक्त हुए हैं।

forced selection	बाधित वरण
frustration	कुंठा, हताशा
fringe benefit	अनुषंगी हितलाभ
freezing (of pay etc.)	कीलन
विलोम unfreezing	अकीलन
halo effect	परिवेश प्रभाव,
halo error	परिवेश त्रुटि
holding company	नियंत्रक कम्पनी
headging fund	प्रतिरक्षा निधि
leg work	दौड़-धूप का कार्य; levy उगाही
manpower inventory	जनशक्ति सूची
motivation	अभिप्रेरण
market friendly	बाजार अनुकूल
memorandum of association	संगम ज्ञापन
memoradum of understanding	समझौता ज्ञापन
margin of safety	सुरक्षा सीमा

market rating	मूल्यांकन / गुणता निर्धारण
negotiable instrument act	परक्राम्य लिखत अधिनियम
nepotism	स्वजन पक्षपात, भाई-भतीजावाद
opinion poll	मत सर्वेक्षण;
outsourcing	बहिःस्रोतन
promissory note (pronote)	वचन पत्र, रुक्का, प्रोनोट
referendum	जनमत संग्रह
real account (property account)	संपत्ति लेखा
retained earnings	प्रतिधारित अर्जन
strategy	कार्यनीति; युक्ति कौशल; रणनीति
sinking fund	निक्षेप निधि
swap	विनिमय, अदला-बदली
slack reason	शिथिल अवधि
secession	मंदी, सुस्ती
subsidiary company	नियंत्रित संपनी
sucession planning	उत्तरवर्ती नियोजन
variable cost	परिवर्ती लागत, तुलना
fixed cost	नियत लागत
venture capital	जोखिम पूंजी
value added tax (VAT)	वर्धित मूल्य कर
work to rule (strike)	नियमानुसार कार्य
wrong doer	दोषकर्त्ता
wrongful	दोषपूर्ण, सदोष
works committee	संकर्म समिति
works cost	संकर्म लागत

wasting assets	क्षयी संपत्ति
wellness	सम्पूर्ण स्वास्थ्य
writtendown value	ह्रासित मूल्य
working director	कार्यवाहक निदेशक
तुलना : acting director	कार्यकारी निदेशक
working paper	आधार पत्र
working conditions	कार्य स्थितियाँ
working arrangment	कार्य चालन व्यवस्था
workmanship	कारीगरी, कर्मकौशल
white collared crime	सफेदपोश अपराध

शेयर बाजार शब्दावली

वैसे तो शेयर बाजार शब्दावली अपने आप में एक स्वतंत्र विषय है जो वस्तुतः वाणिज्य के ही अंतर्गत आता है। नीचे कुछ ऐसे शब्दों के उदाहरण दिए जा रहे हैं जो कंपनी शेयर बाजार और जनसंचार माध्यम से संबंधित हैं :–

1. profit; gain	लाभ 1. लब्धि 2. मुनाफा, अभिलाभ
benefit	हितलाभ
2. share	1. अंश, शेयर, भाग 2. साझी होना
share holder	शेयर धारक
share market	शेयर बाजार
share capital	शेयर पूँजी
equity shares	अंश शेयर
bonus shares	बोनस शेयर

deferred shares	अस्थगित शेयर
right shares	अधिकार शेयर
preference shares	अधिमान शेयर
stock option	स्टॉक (शेयर) विकल्प
stock auction	सौदा नीलामी
spot rate	हाजिरदर
public share issue	सार्वजनिक शेयर निर्गम
primary market	प्राथमिक बाजार
secondary market	गौण बाजार
3. bulls	तेजड़िए; bears मंदड़िए
application money	आवेदन राशि
allotment money	आवंटन राशि
called up capital	मांगी गई पूँजी
call money	आवेदन राशि
paid up capital	प्रदत्त पूँजी
calls in advance	अग्रिम मांग अदायगी
calls in arrears	बकाया मांग
fully paid	पूर्ण प्रदत्त
fully secured (debentures)	पूर्णतः रक्षित (ऋण-पत्र)
capital gains	पूँजीगत लाभ
at par	सममूल्य पर
margin trading	मार्जिन जमा बाजार
4. dividend	लाभांश;
dividend rate	लाभांश दर
dividend warrant	लाभांश वारंट

dividend less tax	दत्त कर लाभांश
derivative market	व्युत्पन्न बाजार
futures	भावी सौदे
forward trading (contract)	वायदा खरीद
goodwill	सुनाम
goodwill profit	सुनाम लाभ
dividend earnings	लाभांश अर्जन
5. hearsay	सुनी-सुनाई, जनश्रुति
grapevine	जन प्रवाद
unconfirmed news	अपुष्ट समाचार
yellow journalism	पीत पत्रकारिता
cut throat competition	घातक प्रतियोगिता
watch dog	हित प्रहरी, यथा
SEBI	केंद्रीय सतर्कता आयोग
whereabouts	अता-पता और ठिकाना
6. brain	मस्तिष्क
brain drain	प्रतिभा पलायन
fresh blood	नव प्रतिभा
brain fog	मस्तिष्क शैथिल्य, दिमागी थकान
brain washing	बलात् मत परितर्वतन / मतारोपण
brain child	सूझ, दिमाग की उपज
brain storming	विचारावेश

निष्कर्ष

प्रस्तुत आलेख शब्दावली आयोग के तत्वावधान में आयोजित वाणिज्य शब्दावली कार्यशालाओं में लेखक द्वारा दिए गए व्याख्यानों पर आधारित है। इस आलेख में कई स्थलों पर अनेक मूलभूत शब्द संयोजनों को सम्मिलित कर उन्हें क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। यदि आयोग के नए संस्करणों में प्रकाशित पर्यायों में भिन्नता है तो सामान्यतः नए संस्करणों के पर्यायों को वरीयता दी गई है। इस आलेख में बैंकिंग और शेयर बाजार की शब्दावली से संबंधित कुछ ही शब्दों का उल्लेख किया गया है। ये विषय वस्तुतः अत्यंत विशद और विस्तृत हैं।

इस आलेख का उद्देश्य सुधी पाठकों को विषय से संबंधित कुछ तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्यायों से अवगत कराना है। अधिकांश शब्द स्वतः व्याख्यात्मक हैं जिन्हें विषय के ज्ञाता आसानी से समझ सकते हैं। आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली कितनी प्रयोग मूलक, सार्थक एवं सटीक है, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर सकेंगे।

□□□

भारत में समाजवादी आंदोलन

डॉ. विश्वनाथ मिश्र

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में भारत वर्ष में परिवर्तन के चिह्न उमड़कर सामने आए। उस समय 1905-1908 के राष्ट्रीय आंदोलन को औद्योगिक मजूदर एवं रेलवे कर्मचारियों की अनेक हड़तालों का सहयोग मिल रहा था। इनमें सबसे बड़ी थी 1908 की हड़ताल जो बाल गंगाधर तिलक पर दंड के आदेश के खिलाफ थी। अब भूपति एवं रैयत, उद्योगपति एवं मजूदरों के बीच जो संघर्ष विकसित हो गया था, उसके विषय में पहली बार राजनीतिक मंच से लोगों ने बोलना शुरू किया।

अंतरराष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस 1904 ई० में एम्सटर्डम में हुई, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व दादा भाई नौरोजी ने किया था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी बी.के.आर. कामा ने एस.आर.राणा जो कुछ ही समय पहले फ्रेंच सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने थे। जिसके साथ स्टटगार्ड कांग्रेस में भारत का प्रतिनिधित्व किया। ज़ार की निरंकुशता के खिलाफ 1905-07 में हुई रूसी क्रांति का यही समय था, आम-मुक्ति संघर्ष के प्रेरक उदाहरण के रूप में इसने भारतीय देशभक्तों पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। गांधी जी के अनुसार रूस की यह क्रांति भारत के

लिए एक सबक थी। उन्होंने कहा "यदि रूसी लोग सफल हो जाएँ तो रूस की यह क्रांति इस शताब्दी की सबसे बड़ी क्रांति मानी जाएगी।" उन्होंने कहा कि "रूस की सरकार और भारत की सरकार में बहुत समानता है, ज़ार की शक्ति से किसी भी तरह कम वायसराय की शक्ति नहीं है। हमलोग भी अत्याचार के खिलाफ उस मार्ग का अवलंबन कर सकते हैं, जोकि रूस ने किया है। रूस के लोगों की तरह हम भी अपनी वैसी शक्ति का प्रदर्शन कर सकते हैं।"

देश में इस नई स्थिति ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत की बल्कि एक अग्रिम समाजवादी आदर्श के अन्वेषण को भी प्रेरित किया।

दलित वर्ग के लोगों ने 19वीं सदी के अंत में शोषण तथा खासकर औपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध प्रतिरोध करना शुरू कर दिया। उनलोगों ने राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष संगठित किया और भारत में विकाससदी समाज के विचारों की प्रगति हेतु पूँजीवाद विरोधी परंपराओं को एक रूप दिया।

अपने आपको मुख्य समाजवादी विचारों पर आधारित कर प्रगतिशील नेतागण भी काम करने को उद्यत थे। वे लोग 1917 की महान रूसी क्रांति के प्रशंसक थे। 1918 में टैगोर ने लिखा "यदि रूसी क्रांति हार की मार खाती है तो यह सुबह के तारे के मुरझाने के समान होगा, जिसके बाद नये युग का सूर्योदय होगा।"

1921 ई. में लाला लाजपत राय ने वोल्शविज्म को मूल एवं वास्तविक विचार माना जिसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। सिविल नाफरमानी (असहयोग आंदोलन) के परिणामस्वरूप बहुत से आमूल परिवर्तनकारी और कांग्रेसी जेल में बंद थे। नासिक जेल में जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवदर्धन, अशोक मेहता, यूसुफ मेहराली, एम.आर. मसानी, एन.जी. गोरे, एस.एम. जोशी और एम.एल. दाँतवाला

सरीखे राजनीतिक व्यक्तित्व कैद थे।. कर्मठ समाजवादी चिंतकों का यह पहला समूह था। इन लोगों ने रूस की भाँति यहाँ भी आंदोलन करने के लिए एक मंच गठित करने की योजना बनाई। सोवियत रूस ने 1917 की क्रांति के बाद आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की, जिससे ये राष्ट्रवादी भी अछूते नहीं रह सके, तत्कालीन युवक जिनमें जवाहर लाल नेहरू प्रथम स्थान रखते थे, सोवियत रूस की प्रगति से अचंभित थे।

नेहरू ने लिखा है "समाजवादी विचारधारा तथा सोवियत क्रांति का प्रभाव हमारे आर्थिक सिद्धांत को परिवर्तित करने के लिए विलंब से आया। पुनः वे कहते हैं कि " संपूर्ण विश्व पूँजीवाद से ग्रसित है और यह अब वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं है।" इंगलैंड और जर्मनी में प्रवासी भारतीयों ने जो वहाँ प्रशिक्षण और अध्ययन के लिए गए थे, तथा युवकों की राष्ट्रवादिता एवं समाजवादी विचारधारा ने भारतीय राजनीतिक चिंतकों की सोच में परिवर्तन की दिशा में प्रमुख भूमिका निभाई। युवकों में व्याप्त शीघ्र समाधान की व्याकुलता का मनोवैज्ञानिक कारण भी है। गांधी जी द्वारा आहूत असहयोग आंदोलन की सफलता, हरिजन-उत्थान के लिए गांधी जी की कार्ययोजना एवं कांग्रेस की आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता ने युवकों की विचारधारा को एक अप्रत्याशित दिशा में मोड़ दिया, उपर्युक्त कारणों से आमूल परिवर्तन चाहने वाले राष्ट्रवादी कांग्रेस के कार्यक्रमों से विमुख होते चले गए। वे ऐसा करना चाहते थे जिसका फल शीघ्र मिले। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की छतरी के नीचे समाजवादी पार्टी का गठन 1934 ई. में हुआ दिखाने के लिए 'प्रत्यय कांग्रेस' का नाम मुख्य संगठन से अपने संबंध को दर्शाने के लिए किया गया।

इस प्रकार नासिक जेल में अवस्थित बंदीगण समाजवादी पार्टी के पहले प्रवर्तक थे। कुछ दूसरे लोग भी समाजवादी आंदोलन की दौड़ में आगे थे। अन्य भारतीय तथा प्रवासी भारतीय भी समाजवादी विचारधारा में अभिरुचि रखते थे जिन्होंने समाजवादी पार्टी के गठन में योगदान दिया।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से पूर्व भी कुछ समाजवादी समूहों का अस्तित्व था। बिहार सोशलिस्ट पार्टी का गठन 1930 में ही हो चुका था। तत्पश्चात् पंजाब सोशलिस्ट पार्टी तथा बंगाल लेबर पार्टी का गठन हुआ। कांग्रेस संगठन में भी वामपंथी खेमा नेहरू और सुभाष के नेतृत्व में अपनी जड़ें मजबूत कर रहा था। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में मौलिक अधिकार से संबंधित, प्रस्ताव पारित किया गया जिससे वामपंथी खेमे का कांग्रेसी खेमे में महत्व महसूस किया गया। उक्त प्रस्ताव में कहा गया कि "प्रमुख औद्योगिक एवं अन्य सेवाएँ, खनिज स्रोतों, रेलवे, जल, परिवहन, जहाजरानी और सार्वजनिक परिवहन के अन्य साधन राज्य के नियंत्रण में रहने चाहिए।"

मार्च 1931 में स्वराज पार्टी के उत्थान से समाजवादी विचाराधारा को बल मिला, क्योंकि स्वराज पार्टी एक दक्षिणपंथी पार्टी था जिससे विधान सभा और विधान परिषद् के चुनाव हेतु प्रयत्न किया था। इस प्रकार सदन में प्रवेश एवं संवैधानिक व्यवस्था में इसकी पूर्ण आस्था समाजवादी नेताओं ने कांग्रेस की संकीर्ण विचारधारा को नापसंद किया, फिर भी कई कारणों से वे लोग कांग्रेस के ही सदस्य बने रहे।

कांग्रेस समाजवादी दल के संविधान का मुख्य लक्ष्य था – भारत की पूर्ण आजादी और भारत में समाजवाद की स्थापना। कांग्रेस समाजवादी दल के अनुसार समाजवाद का अर्थ मात्र संपत्ति के नियमों में परिवर्तन करना नहीं था, बल्कि समाज में व्याप्त बुराइयों का

समाधान भी खोजना था। समाजवाद का विकास मार्क्स के सिद्धांत पर आधारित था जो सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली का एकमात्र अस्त्र था।

असहयोग आंदोलन को वापस लेने संबंधी प्रस्ताव पर अपनी मुहर लगाने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक अधिवेशन पटना में सन् 1934 ई. में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन का एक उद्देश्य कांग्रेस के भावी कार्यक्रम का प्रारूप तैयार करना भी था। इस अधिवेशन के समक्ष एक ज्वलंत समस्या यह थी कि संवैधानिक और संसदीय प्रणाली की ओर कदम बढ़ाया जाए या नहीं। उसी समय समाजवादियों का प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन जयप्रकाश नारायण के संयोजकत्व में तथा आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में बिहार समाजवादी दल की ओर से आयोजित किया गया। सभापति के अनुसार इस अधिवेशन का मुख्य लक्ष्य था – "संवैधानिकता की ओर कांग्रेस के बढ़ते कदम को रोकना तथा देश के समक्ष एक गतिशील कार्यक्रम प्रस्तुत करना।"

इस अधिवेशन ने अपने एक प्रस्ताव में, जो बाद में कांग्रेस समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया, कांग्रेस से यह अपील की कि वे कांग्रेस समाजवादी सिद्धांतो से प्रेरित कार्यक्रम अपनाएँ। इस प्रस्ताव में कहा गया कि 'कराची में संपन्न अधिवेशन मौलिक अधिकार संबंधी यह घोषणा करता है कि आम जनता का शोषण समाप्त करने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता में लाखों भूखे लोगों की आर्थिक आजादी निहित रहनी चाहिए। स्वतंत्रता संग्राम का आधार विस्तृत हो, स्वराज प्राप्त करने के बाद आम जनता शोषण का शिकार नहीं हो, इस बात की गारंटी होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि कांग्रेस ऐसे कार्यक्रम को लेकर चले जो क्रिया एवं उद्देश्य में समाजवादी है।

कांग्रेस समाजवादी दल की संगठनात्मक तथा सैद्धांतिक पहलुओं के बारे में इसके बंबई अधिवेशन में बृहत् रूप से चर्चा हुई तथा तय किया गया कि इसका संगठन कैसे किया जाए और इसका सिद्धांत कैसा हो। बंबई का यह अधिदेशन 21-22 अक्टूबर 1934 को डॉ. संपूर्णानंद की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। स्वागत समिति के अध्यक्ष पुरुषोत्तम दास टंडन थे। इसमें भाग लेने के लिए प्रांतीय समाजवादी दलों ने 137 सदस्यों को भेजा था। उस समय प्रांतीय समाजवादी दलों की संख्या 13 थी, जिनके नाम थे – बिहार, यू.पी., गुजरात, बंगाल, बंबई, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, केरल, दिल्ली, बेरार, सी.पी., उत्कल और अजमेर। अधिवेशन में पारित दल के संविधान संबंधी प्रस्ताव में इस दल का नाम अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल रखा गया। पार्टी का मुख्य उद्देश्य अधिवेशन के मुताबिक पूर्ण आजादी की प्राप्ति थी। पूर्ण आजादी का तात्पर्य ब्रितानी साम्राज्य से पूर्ण संबंध-विच्छेद एवं समाजवादी समाज की स्थापना करना था।

कांग्रेस समाजवादी दल का द्वितीय अधिवेशन मेरठ में 20 जनवरी, 1936 को संपन्न हुआ। मेरठ अधिवेशन में राष्ट्रीय आंदोलन को एक निश्चित दिशा देने पर बल दिया गया, मेरठ अधिवेशन का महत्व इसलिए भी है कि इस अधिवेशन में ही राष्ट्रीय आंदोलन को सही अर्थों में साम्राज्यवाद विरोधी संग्राम में बदलने का संकल्प लिया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह आवश्यक था कि साम्राज्यवाद विरोधी तत्वों को कांग्रेस के बुजुर्ग नेतृत्व के प्रभाव से मुक्त किया जाए और उन्हें क्रांतिकारी समाजवाद से प्रभावित किया जाए।

कांग्रेस समाजवादी दल का तृतीय अधिवेशन फैजपुर में 23-24 दिसंबर 1937 को संपन्न हुआ। इसने एक ऐसा फार्मूला तैयार किया जो मेरठ दस्तावेज का विकसित रूप था। कार्यक्रम एवं विचार के

दृष्टिकोण से फैजपुर दस्तावेज नए रूप में नहीं था, अपितु कार्यक्रमों को गतिशीलता प्रदान करने का इसमें स्पष्ट उल्लेख था। मेरठ की तरह फैजपुर में भी साम्राज्यवाद से लोहा लेने के लिए संयुक्त मोर्चा बनाने पर बल दिया गया।

कांग्रेस समाजवादी दल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में गतिशील परिवर्तन का द्योतक बन गया। 1934 से ही समाजवादी लोग राष्ट्रीयता एवं समाजवाद को ध्यान में रखते हुए क्रियाशील थे।

1934 ई. से 1947 ई. की संपूर्ण अवधि विभिन्न मुद्दों पर कांग्रेस और कांग्रेस समाजवादी दल के विचारों के बीच उत्पन्न हुए विभेदों की रही। कांग्रेस के लिए कांग्रेस समाजवादी दल एक चुनौती के रूप में खड़ा था, कांग्रेस का नेतृत्व दक्षिणपंथियों के हाथ में था। समाजवादियों द्वारा समाजवाद, वर्ग-संघर्ष, क्रांति जैसे शब्दों का ढिढोरा पीटे जाने को दक्षिणपंथी नापसंद करते थे।

कांग्रेस समाजवादी दल, भारत सरकार अधिनियम, 1935 का कटु आलोचक था। कांग्रेस समाजवादी दल ने कांग्रेस मंत्रिमंडल से किसानों और श्रमिकों के लिए और रियायत की माँग की।

जिस समय द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ उस समय भारत सरकार अधिनियम के मुताबिक ग्यारह प्रांतों को स्वायत्तता प्राप्त थी। केंद्रीय सभा के अधिकांश सदस्य निर्वाचित थे, फिर भी न तो केंद्रीय सभा न प्रांतीय सभा को युद्ध के संबंध में उठाए गए कदमों के बारे में कोई सूचना दी गई। 1939 के कांग्रेस समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में समाजवादियों द्वारा बिना किसी शर्त के युद्ध का विरोध करने का निर्णय लिया गया। 12 अगस्त 1939 को वर्धा में भाषण देते हुए नरेंद्र देव ने कहा "हमलोग युद्ध में भारतवर्ष

के शरीक होने का विरोध करतें हैं।" सन् 1940 में पूना में हुए कांग्रेस समाजवादी दल के अखिल भारतीय सम्मेलन में ब्रितानी शासन एवं युद्ध का पूर्ण रूप से विरोध करने का निर्णय लिया गया।

18 फरवरी 1940 को श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा "लोग वित्तीय कर देना बंद कर दें। हमें अपनी सरकार बनानी चाहिए, लोगों को चाहिए कि अपनी पुलिस कचहरी स्थापित करें तथा ब्रितानी शासन का परित्याग कर दें।" रेलवे, पोस्ट आफिस, सुरक्षा-सेना तथा अन्य कर्मचारियों की आम हड़ताल का आयोजन होना चाहिए तथा लोगों को अपना शासन आप करने के अधिकार को मूर्त रूप देना चाहिए। अतः हम सभी मिलकर हड़ताल करें। 1942 ई. में गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद संपूर्ण राष्ट्र में क्रांति की लहर फैल गई। हर जगह विरोध-सभाएँ होने लगीं तथा उसे दबाने के लिए पुलिस लोगों की पिटाई एवं उन्हें कैद करने में लग गई। इस समय समाजवादियों ने हिंसा का मार्ग अपनाया। गांधी जी की इच्छा के विरुद्ध वे तोड़-फोड़ करने लगे ऐसी स्थिति में टेलीग्राफ के तार काटे गए, रेलवे की पटरियाँ उखाड़ी गईं तथा रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे, पुलिस चौकियाँ आदि को जलाया जाने लगा। लोगों में स्वतंत्रता, प्रजातंत्र तथा स्वायत्त शासन प्राप्त करने की आकांक्षा की लहर व्याप्त हो गई। किंतु इसे अगस्त के अंत तक ब्रितानी शासन ने अनेकानेक अमानुषिक तरीकों से दबा दिया। इस जनक्रांति तथा तोड़-फोड़ में समाजवादियों ने सक्रिय रूप से हाथ बँटाया।

सन् 1947 में जयप्रकाश नारायण ने लिखा "भारत छोड़ो की माँग को पुनर्जीवित करना तथा विदेशी सत्ता को अंतिम चुनौती देने के लिए लोगों को संगठित करना ही एकमात्र उपाय है, क्योंकि यही वह शक्ति है जो इस देश में प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहित करती

है तथा उसे समर्थन देती है। सबसे पहले इसी शक्ति को हमें नष्ट करना है। मेरा विश्वास है कि एकमात्र क्रांति की आग में ही वह शक्ति है कि वह साम्राज्यवाद, जातिवाद और सामंतवाद को भस्म कर दें।"

फरवरी 1947 में कांग्रेस समाजवादी दल का वार्षिक अधिवेशन कानपुर में हुआ। इस अधिवेशन में समाजवादियों ने अपने दल के पूर्व सिद्धांतों का पुनः समर्थन किया। अधिवेशन में कहा गया कि इस बात पर पूरी सतर्कता रहनी चाहिए कि शक्ति केवल भारतीयों के हाथ में नहीं दिया जाए, बल्कि शक्ति भारतीय श्रमजीवियों के हाथ में दिया जाए। इस अधिवेशन में एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया जो बाद में चलकर समाजवादी आंदोलन के इतिहास में सीमा-रेखा बन गया। इन्होंने नया संविधान बनाया जिसमें कांग्रेस समाजवादी दल के नाम से कांग्रेस उपसर्ग को हटा दिया और दल की सदस्यता का द्वार उन लोगों के लिए भी खोल दिया जो कांग्रेसी नहीं थे।

कानपुर के इस नीति-पत्र ने समाजवाद का स्पष्ट चित्र सामने ला दिया, इसके अनुसार "समाजवाद एक प्रजातांत्रिक समाज होगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति कामगार होगा, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों समान होंगे, जिसमें सब के लिए अवसर की समानता होगी तथा जिसमें मजदूरी में कोई भेदभाव नहीं होगा जिसके कारण वर्ग-भिन्नता की पैदाइश हो, संपत्ति पर पूरे समाज का अधिकार होगा, उन्नति करने की योजनाएँ बनेंगी, श्रमिक प्रसन्न रहेंगे, जीवन अधिक संपन्न, ऐश्वर्यवान और सुंदर होगा।

सन् 1948 में नासिक में हुए समाजवादियों के छठे वार्षिक अधिवेशन में अंतिम रूप से समाजवाद और कांग्रेस का संबंधदियों-विच्छेद हो गया। इस तरह समाजवादी दल ने 1948 में कांग्रेस का

त्याग कर पूर्णरूपेन स्वतंत्र समाजवादी दल का गठन किया जिसका नाम उन्होंने भारतीय समाजवादी दल रखा।

1949 में हुए पटना अधिवेशन में कांग्रेस की आलोचना करते हुए समाजवादियों ने यह महसूस किया कि समाजवादी दल ही एकमात्र ऐसा दल था जो जनता की तकलीफ को प्रकाश में ला सकता था और राष्ट्र को समाजवाद की ओर उन्मुख कर सकता था।

1950 में हुए दल के मद्रास अधिवेशन में दल के संविधान को संशोधित किया गया। इस अधिवेशन में प्रजातांत्रिक समाजवाद को इस दल का लक्ष्य माना गया।

1952 में प्रथम आम चुनाव से लेकर आजतक समाजवादी आदर्श की अनिवार्यता समय-समय पर महसूस की जाती रही। बीच में कुछ समाजवादी आदर्शों की प्राप्ति भी हुई लेकिन दक्षिणपंथियों की चाल एवं समाजवादियों की महत्वाकांक्षाओं के नीचे यह कुचली जाती रही। किंतु यह निश्चित है कि समाजवादी आदर्शों को ईमानदारी से लागू करने के बाद ही देश में शांति, सद्भावना और सुख की प्राप्ति हो सकेगी।

□□□

विश्व बाजार और हिंदी

डॉ. रंजित एम.

भाषा मानव संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है। यह समाज की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है। अज्ञेय के शब्दों में "भाषा कल्प-वृक्ष के समान है। यदि भाषा को ठीक तरह से साधा जाए तो वह हमें सब कुछ दे सकती है।" भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है। इसने जहाँ हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों को स्थापित किया है। वहीं हिंदी इन स्थापित मूल्यों की पोषक रही है।

उदारीकृत अर्थव्यवस्था में बाजार की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए अब इस नए परिप्रेक्ष्य में हिंदी को देखे जाने की आवश्यकता है। बाजार और भाषा दोनों अलग अलग सत्ताएँ हैं। भाषा बाजार की रीढ़ है। उसके बिना बाजार की कोई कल्पना नहीं की जा सकती है। भाषा बाजार को प्रभावित करती है और लाभप्रद बनाती है। बाजार का प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। इतिहास से हमें बाजार द्वारा निर्मित भाषा की जानकारी भी मिलती है। शाहजहानाबाद के किले में जो बाजार अमीर, बादशाह और बेगमों के लिए लगता था उसे उर्दू-ए-मुअल्ला कहते थे। उर्दू-ए-मुअल्ले के लोगों ने खड़ी बोली से विकसित हिंदी में आगरा की ब्रजभाषा की मिठास और फारसी का रंग

चढ़ाया। उर्दू-ए-मुअल्ला से धीरे-धीरे मुअल्ला और जबान छूट गया और केवल 'उर्दू' शब्द ही रह गया।

इसलिए भाषा की निर्मिति बाजार में भी होती है। बाजार में भाषा चीजों को परिभाषित करती है और चीजें भाषा को। गाँव के हाट से जिला मंडी तक, जिला मंडी से प्रांतीय बाजार तक और वहाँ से राष्ट्रीय बाजार और अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क तक बाजार बढ़ चुके हैं। बाजार और भाषा बदलते रहते हैं। विश्व बाजार, अब तक स्वायत्त समाजों और संस्कृतियों के रहन-सहन, वेश-भूषा, दैनिक जीवन, आचरण और मूल्य-बोध को अपने तरीके से अनुकूल बना रहा है। स्थानीय संस्कृति भूमंडलीय संस्कृति को अपना रही है। विश्व बाजार की इस सांस्कृतिक पीठिका को सामने रखकर हमारे देश के संदर्भ में हिंदी भाषा से उसके बनते हुए संबंध को परखना समय की माँग है।

उपभोग की नई-नई वस्तुओं और उत्पादित माल के खपत ने विश्वग्राम की कल्पना को समर्थन दिया है। भाषा और सृजनात्मक साहित्य भी इस बाजारी प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। बाजार सृजनशीलता को दूर-दूर तक पहुँचाते हैं। मुक्त बाजार व्यवस्था का नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में है। नयी आर्थिक नीति को ग्राह्य बनाने के लिए वे संचार माध्यमों से सहारा ले रहे हैं। उनके मुख्य लक्ष्य हैं, शीघ्र गति से अत्यधिक उत्पादन करना और लोगों को ज्यादा से ज्यादा वस्तुओं के उपभोग हेतु प्रेरित करना। चार्वाक सिद्धांत *(यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत्, ऋणम् कृत्वा घृतम् पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुरागमनं कुत।।)* को अपनाने की प्रेरणा ये लोग दे रहे हैं। आवश्यक वस्तुओं से ज्यादा विलासपूर्ण वस्तुओं को खरीदने के लिए धन की आवश्यकता होती है। देने के लिए यदि सरकार के पास पैसा नहीं है तो विश्व बैंक ऋण देगा। उससे विदेशी कंपनियों दवारा उत्पादित विलासितापूर्ण माल का उपभोग कर सकते हैं। बाजार ने ही

बाजारवाद को जन्म दिया है, बाजारवाद वह विचारधारा है जो हर चीज को बिकाऊ मानकर चलती है। संस्कृति, कला, ज्ञान ही नहीं भाषा भी उदारीकरण के चंगुल से मुक्त नहीं है।

जीवंत भाषा में प्रयोग के छह क्षेत्र हैं – कामकाजी भाषा (Conversational language), माध्यम भाषा (Media language), यांत्रिक भाषा (Mechanical language), संचार भाषा (Communication language) और साहित्यिक भाषा (Langaugage of Creativity)। विश्व बाजार के उत्पाद समकालीन भाषा में पहले जैसी उदात्ता, गरिमा एवं मूल्यबोध न के बराबर है। भाषाओं में बाजारवादी उपभोक्तावाद अपमिश्रण ला चुका है। मानक खड़ी बोली का प्रयोग अब कम हो रहा है जो प्रायः राजभाषा तक सीमित रह गया है।

भाषा की सत्ता और भाषा के बाजार में फर्क है। लेकिन दोनों में आजकल जो रिश्ता दृढ़ होता जा रहा है वह भारतीय भाषाओं के नाश का हेतु हो सकता है। बाजारवाद के कारण हिंदी फैल रही है, मगर हिंदीवाले सिकुड़ते जा रहे हैं। भाषा के प्रत्येक अंग में हिंदी इंगलिश बन चुकी है। एक उदाहरण देखिए –

"डैड टूमारो हमारा स्कूल हिन्दी डे सेलिब्रेट करेगा। कई प्रोग्राम होने वाले हैं। मैं भी पार्टिसिपेट करूँगा। इस ओकेजन पर तीन प्राइज डिस्ट्रिब्यूट किए जाएँगे, फर्स्ट, सेकेन्ड और थर्ड।" डॉ. रवि शर्मा ने अपनी किताब का शीर्षक 'ग्लोकल हिंदी' रखा है। 'ग्लोकल' शब्द 'ग्लोबल' और 'लोकल' के मेल से बना है। इसका प्रयोग विश्व व्यापार के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।

बाजारवाद के कारण हिंदी में आ रहा बदलाव दो शैलियों में है। पहला अंग्रेजी के सामान्य बोलचाल वाले शब्दों को सहज और समाहित करनेवाली सामान्य स्वाभाविक शैली और दूसरा हिंदी के सरल शब्दों पर भी अंग्रेजी थोपने की अतिवादी शैली। अतिवादी शैली

वास्तव में हिंदी भाषा के लिए खतरनाक है। भाषा में आए इस बदलाव को कुछ लोग भाषा की अराजकता (Linguistic anarchism) और कुछ लोग भाषा का उदारीकरण मानते हैं। बाजारवाद के प्रभावों पर अध्ययन करने वाले डॉ. वी.एन. रेड्डी जैसे लोगों ने विचार व्यक्त किया है कि हमारी भाषा से गरिमा, उदात्त एवं मूल्यबोध चूस लिया गया है। 'मरीज' अब 'पेशेंट' बन चुका है, 'घरेलू हिंसा' डोमेस्टिक वायलंस' और 'फायदा' 'एंडवेंटेज'। इससे यह स्पष्ट होता है कि बाजारवाद सहज बदलाव की प्रवृत्ति को ही बदनाम कर रहा है। इस प्रकार हिंदी भाषा पर थोपे जाने वाले अंग्रेजी शब्दों को 'सहज बदलाव' कैसे कहा जाएगा? हमें अतिवादी शैली का छोड़कर स्वाभाविक शैली को अपनाना पड़ेगा।

आज मानवीय कार्यकलाप का हर क्षेत्र को विज्ञापन उल्लेखनीय तरीके से प्रभावित कर रहा है। महत्वपूर्ण काम कर रही है। हमारी जिंदगी की जरूरतों का फैसला अब हम नहीं करते, कंपनियाँ करती हैं। विज्ञापन को बाजारवाद के काले जादू का सुनहरा इंद्रजाल माना जाता है। 'असली चाय टाटा चाय' एवं 'सिन्टेक्स वक्त की कसौटी पर अव्वल' जैसे स्वदेशी विज्ञापन आज 'ठंडा मतलब कोकाकोला', 'ये दिल माँगे मोर', 'लिखते-लिखते लव हो जाए' तक पहुँच चुका है। इसका खतरा यह है कि हमारी लोक संस्कृति में जो मोर है, वह अब अंग्रेजी मोर हो गया है। दोनों में कितना फर्क है। विज्ञापन ने अपने अनुरूप भाषा को ढालना शुरू किया है। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि बाजारवाद हमारी संस्कृति पर हमला कर रहा है। बाजारवाद के इस नए रूप-रंग को देखकर हिंदी हँस रही है, मगर हिंदीवाले रो रहे हैं।

एक शोध यह निष्कर्ष दिखाता है कि विश्व बाजार में एक भाषा के रूप में हिंदी का इस्तेमाल आज ज्यादा हो रहा है। हिंदी को

बाजार के साथ जोड़ने के प्रयास में पूँजीपति भाषा के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।

हिंदी फिल्म निर्माता भी अति शैली के पुजारी बन चुके हैं। हिंदी सीखने के लिए हिंदी सिनेमा देखने वाले अब दुविधा में हैं क्योंकि अंग्रेजी का इस्तेमाल दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। विदेशी बाजार को ध्यान में रखकर हिंदी फिल्मों का निर्माण हो रहा है। इसीलिए फिल्मों के 'जब वी मेट' जैसे नाम रखे जा रहे हैं।

इलेक्ट्रोनिक मीडिया के कारण व्यक्तियों के प्रत्यक्ष सामाजिक संपर्क में कमी आ गई है। मनुष्य को दंभी एवं आत्मकेंद्रित बनाने में सफलता मिल चुकी है। फलस्वरूप लोग क्षणिक आनंद को वास्तविक मानने लगे हैं। आदमी और आदमी के बीच आई खाई को दिखाते हुए कवि पंकज सिंह लिखते हैं :–

"यहाँ आदमी और आदमी के बीच
दिन-ब-दिन
गहरी होती जाती है सन्नाटों की धुन्ध
खून की जगह हमारी रगों में
बहने लगा है अब नागरिकता का आतंक
शाम के झुटपुटे मे गिरती है
हमारी आस्थाहीन छायाएँ"

हिंदी और अंग्रेजी की अजीबो-गरीब खिचड़ी-भाषा को विकसित रूप नहीं कहा जा सकता। भाषा की अशुद्धता आपत्तिजनक नहीं है। आपत्तिजनक तत्व यह है कि यह भाषा शोषण, स्वार्थता, बर्बरता, भोग विलास एवं आत्मकेंद्रिकता पर टिके रहने वालों की है। इस खिचड़ी भाषा में वंचित जनता की मार्मिक स्थितियों की कोई ध्वनि नहीं है, उनके जीवन का कोई तत्व व्यक्त नहीं होता है। इसमें सिर्फ वाणिज्यपरक दृष्टि है। विश्व बाजार की नई स्थितियों में हिंदी भाषा

की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उसको सामाजिक द्वन्द्व में अस्त्र की तरह इस्तेमाल करके उसकी आत्मा को छीन लिया जा रहा है, वह गूँगी होती जा रही है। हिंदी केवल माल बेचने की भाषा बन रही है; वह जनता से संबंध तोड़कर एक चमकीले संसार का हिस्सा बन रही है। रघुवीर सहाय ने लिखा :–

अंग्रेजी इसे कह नहीं सकती
और तुम्हारी हिंदी
वह इसे कह नहीं पाएगी अगले साल

विदेशी फिल्मों को हिंदी में रूपांतरित करने की प्रवृत्ति हिंदी की इज्जत बढ़ाने वाली नहीं वरन् व्यापक हिंदी समाज को अपनी फिल्म दिखा मुनाफा कमाने कीं है। रूपर्ट मर्डोक अपना स्टार नेटवर्क भारत में लेकर आए और अंग्रेजी धारावाहिकों का देसी संस्करण बनाया। इस तरह विश्व बाजार की शक्तियों द्वारा एक माध्यम के रूप में हिंदी का इस्तेमाल भारतीय समाज की जड़ को हिलाने की कोशिश है। यहाँ हिंदी भाषा की एक विडंबनात्मक स्थिति ही हमारे सामने उजागर होती है।

स्वायत्त ढंग से बसे बाजार भाषा की उन्नति के लिए उपयोगी होते हैं। मगर सूचना प्रोद्योगिकी प्रेरित आज का बाजार राज्यविहीन होते समाजों का बाजार है। स्थानीय जरूरतों को मिट्टी में मिलाते हुए, जन आकांक्षाओं को कुचलते हुए बढ़ने वाले इन बाजारों को जनतंत्र पसंद नहीं है क्योंकि वह उनके रफ्तार को धीमा करता है। जनतंत्र के पुजारी देशों में वे अपने कानून चलाने हेतु विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special economic zone) की स्थापना कर रहे हैं। परिणामस्वरूप पूँजीवाद और सामंतवाद नए रूप में वापस आ रहे हैं। मंगलेश डबराल लिखते हैं :–

जिसने कुछ रचा नहीं समाज में
उसी का हो चला समाज

भाषा का सर्वोत्कृष्ट रूप साहित्यिक भाषा मानी जाती है। वर्तमान समय की सृजनशीलता पर बाजार का दबाव कुछ ज्यादा पड़ रहा है। बाजार में सृजनशीलता का अर्थ अलग है। वहाँ खरीदना और बेचना सृजनशीलता का आधार है। सफलता को मूल्य के रूप में मानते हुए वे सृजन के क्षेत्र को कई हिस्सों में विभाजित करते हैं। अमूर्तता और अराजकता को उन्नत कला की हैसियत देकर वे सर्जकों को फँसाते हैं। वे सृजन की वैयक्तिकता और सामूहिकता को लुप्तप्राय बनाते हैं। रचनाकार को पूँजीपति बनाते हैं। शब्दों को बेकार और निष्पंद बन जाने के खतरे को समझ कर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा :–

बहुत बुरा वक्त है यह शब्द के लिए
मैं अपने लाल–लाल शब्दों के रक्त तक
मैं अपने उजले–उजले शब्दों के साथ
पहुँचना चाहता हूँ स्तनों के दूध तक
रास्ते में मिलते हैं बटमार
निष्पंद और बेकार
बहुत बुरा वक्त है यह शब्द के लिए

उदारीकरण और निजीकरण की उपज बाजारवाद, अपनी स्थिति बरकरार रखने के लिए भाषाई संस्कृति का सहारा लेता जा रहा है। वरिष्ठ कवि केदारनाद सिंह बाजार के इस खतरे की ओर संकेत करते हुए कहते हैं – "भाषा को निरर्थक बनाने का यह छल–छद्म एक व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा है। जो शब्द से अर्थ को, अर्थ से संवेदना को, और संवेदना से उसके मूलभूत यथार्थ को अलग करके बोध की पूरी प्रक्रिया को विकृत करने में लगी हुई है। यह समाज के विचार और अनुभव को कुंठित करनेवाली प्रक्रिया है।"

यह आशंका है कि साहित्य आज संस्कृति के केंद्र से हटकर हाशिये पर आ रहा है। साहित्य के भविष्य को लेकर भी लोग चिंतित हैं। चुनौतिपूर्ण रास्ता उसको पार करना पड़ेगा। सालों पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था – "ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों कवियों के लिए काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा संबंध रखनेवाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उनको बहुत से शब्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जाएँगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा।"

बाजार में खड़े सर्जक का प्रतिरोधी मिथकों एवं स्मृतियों से आलोचनात्मक संवाद बाजार से टकराने का एक रचनात्मक रास्ता है और बाजार द्वारा खड़े किए जा रहे मिथकों से टकराव उसकी पहली जरूरत।

बाजार की अपसंस्कृति से खीझकर धूमिल ने प्रश्न किया :–

आखिर मैं क्या करूँ
आप ही जवाब दें
तितली के पंखों में
पटाखा बाँधकर भाषा के हल्ले में
कौन सा गुल खिला दूँ?

साहित्य भी आज बाजार में उपभोग की सामग्री बन गई है। इस प्रवृत्ति ने एक नयी सामाजिकता को जन्म दिया। मैनेजर पांडेय कहते हैं कि – "यह सामाजिकता इतिहास की प्रक्रिया की देन है, जिससे आप का नितांत व्यक्तिवादी और कलावादी लेखक भी नहीं बच सकता।" 'बाजार' नामक कहानी में अमर गोस्वामी ने बाजार के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है :–

"यह दुनिया मत्स्य-न्याय से ही चल रही है। बड़ी ताकतें, छोटी ताकतों को बड़ा व्यापारी छोटे को, बड़ा बाजार छोटे को... इस तरह मुँह फाड़े लोगों की एक लंबी व्यवस्थित कतार बनी हुई है।"

बाजारवादी युग में भारत को जहाँ इंडिया ग्रसने को बढ़ रहा है, हिंदी के माध्यम से आज एक और पुनर्जागरण की आवश्यकता है। हिंदी के माध्यम से देश के सोए स्वाभिमान को जगाना है। हमें स्वतंत्र भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को जगाना और प्रतिष्ठित करना है। भाषा सिर्फ सार्थक ध्वनि संकेतों की प्रणाली ही नहीं, यह एक जीवंत इकाई भी है। शब्दों की ताकत पर विश्वास रखते हुए केदारनाथ सिंह ने लिखा :–

अंत में मित्रों
इतना ही कहूँगा
कि अंत महज एक मुहाविरा है
जिसे शब्द हमेशा
अपने विस्फोट में उड़ा देते हैं
और बच रहता है हर बार
वही एक कच्चा-सा
आदिम मिट्टी-जैसा ताजा आरंभ
जहाँ से हर चीज़
फिर से शुरू हो सकती है।

हिंदी की डोर पकड़ कर हमें बाजारवाद की प्रक्रिया में प्रासंगिक बनना है। हमें संकल्प कर लेना चाहिए कि हम अपना भविष्य हिंदी से गढ़ेंगे। नव औपनिवेशक दौड़ में अपनी संस्कृति को बचाने का यही तरीका है। हिंदी के संपन्न और बहुरंगी भाषिक परंपरा से संपृक्त होकर हमें आगे बढ़ना है तभी हमारी अस्मिता सुरक्षित रहेगी।

कन्या भ्रूणहत्या के उन्मूलन में साहित्य की भूमिका

डॉ. कृष्ण कुमार कौशिक

'कन्या हत्या' का मुद्दा आज से हजार वर्ष भी पूर्व भी विद्यमान था। तब भी भारतीय रचनाकारों, मनीषियों और विदेशी पर्यटकों ने इस सामाजिक बुराई पर सटीक टिप्पणियाँ की थीं। इस बुराई का जोरदार विरोध भी किया था। लेकिन वह स्त्री, जिसकी स्थिति घर में दासी या गुलाम के समान हो, 'कन्या हत्या' का विरोध करने का साहस कैसे कर सकती थी? पुरुष की हठधर्मिता, राजकीय कोप, आर्थिक विवशता और सामाजिक उपेक्षा आदि न जाने कितने दंश वह नारी सहती थी। पितृसत्ताक समाज में स्त्री की स्थिति पशु से बदतर थी। वहीं उक्त व्यवस्था के प्रतिवाद में ललद्यद, रजिया बेगम, मीराँबाई, झलकारी देवी आदि का बुलंद स्वर भी सुनाई देता था। जागरूकता के अभाव में 'कन्या हत्या' वर्तमान संदर्भ में 'कन्या भ्रूणहत्या' के रूप में और भी गंभीर रूप धारण कर चुकी है अपितु समाज के लिए एक अभिशाप बन गई है। इस बुराई का दायरा बढ़ता ही जा रहा है जिसकी गिरफ्त में आयरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, कुवैत, अमरीका और चीन भी आ चुके हैं।

यानी समस्या अंतरराष्ट्रीय रूप धारण कर चुकी है। *राष्ट्रीय सहारा* में 'कन्या भ्रूणहत्या के खिलाफ शुरू होगा वैश्विक अभियान' शीर्षक से छपी खबर हमें झकझोर रही है। इस खबर का कुछ अंश उद्धृत है – "भारतीय मूल की एक अमरीकी महिला नयना पैस कापुटी जेम्स गैरो के सहयोग से भारत में 'कन्या भ्रूणहत्या और शिशु हत्या की बुराइयों के खिलाफ एक वैश्विक अभियान शुरू करेंगी। आयरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, कुवैत, अमरीका और भारत में इस सामाजिक बुराई का विरोध करने के लिए शांति मार्च निकालेंगे। जेम्स गैरो ने चीन में 31 हजार बच्चियों की जान बचाने में मदद की है।" नयना पैस कापुटी लोगों को जागरूक करने के लिए इस मुद्दे पर एक वृत्तचित्र भी बना रही हैं। जिसका नाम *पेटल्स इन द डस्ट : इंडियाज मिसिंग गर्ल्स* है (राष्ट्रीय सहारा 6.3.2010)।

जागरूकता के अभाव में यह बुराई समाज के प्रत्येक तबके में अपने पैर पसार चुकी है। इसके कारणों की ईमानदारी से पड़ताल होनी चाहिए। यह अभिशाप संपूर्ण सामुदायिक संरचना के लिए एक गंभीर चुनौती है। यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो समूचा सामुदायिक ढाँचा चरमरा जाएगा। विषम होता लैंगिक अनुपात समाज के लिए खतरा बनता जा रहा है। *वर्ल्ड फैक्ट बुक* (सन् 2008 का अनुमान) जो तस्वीर पेश करता है उसके अनुसार लिंग-अनुपात के मामले में भारत 220 देशों की सूची में अंतिम चार देशों में आता है। 'कन्या भ्रूणहत्या एक सामाजिक अभिशाप' विषय पर होने वाला गहन विचार-विमर्श निश्चित रूप से समाज को इस अभिशाप के प्रति संवदेनशील बनाने में अहम भूमिका निभाएगा। आज का समाज निष्ठुर होता जा रहा है। उसके मानवीय अंतःकरण को लकवा मार गया है। बाजारवाद के प्रभावस्वरूप व्यक्ति वस्तु में बदलता जा रहा है। वस्तु में संवेदना नहीं होती। दर्द से उसकी दोस्ती समाप्त हो चुकी है। दर्द

में मनुष्य को जगाने की शक्ति निहित है। हमें समाज को संवदेनशील बनाने के लिए उसे दर्द से जोड़ना होगा। दर्द से बड़ा दोस्त इस संसार में कोई नहीं है। *दोस्त नहीं दरद समि जो दिल अंदर होय।* समाज में कन्या भ्रूण हत्या के अनेक कारण हो सकते हैं। लेकिन सबसे बड़ा कारण संवेदनहीनता है। साहित्य का पठन-पाठन मनुष्य और समाज को संवेदनशील बनाता है। इसलिए इस समस्या के उन्मूलन में साहित्य की भूमिका को रेखांकित करना अपेक्षित और आवश्यक है।

बासु भट्टाचार्य का कहना था कि प्रकृति ने सिर्फ नर और मादा पैदा किए और बाकी सब कुछ नर और मादा ने पैदा किया यहाँ तक कि अपनी समस्याएँ भी...। पुरुषप्रधान समाज में कन्या भ्रूण हत्या सामाजिक बुराई तो है ही, जघन्य अपराध और एक सामाजिक समस्या भी है। इस सामाजिक बुराई के विरुद्ध सबसे पहले साहित्यकारों ने समाज को जागरूक करने का प्रयास किया था और आज भी कर रहे हैं। हिंदी साहित्य के अनेक रचनाकारों ने इस अभिशाप की ओर न केवल संकेत किया वरन् उसकी निंदा भी की है। 13वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने पुत्री के जन्म को भारतीयों द्वारा अच्छा न समझे जाने की भर्त्सना की है जिससे पता चलता है कि तत्कालीन समाज में भी पुत्री जन्म को शुभ नहीं माना जाता था। वह इसे एक सामाजिक दोष स्वीकार करते हैं। 14वीं शताब्दी में कश्मीरी संत कवयित्री ललद्य ने निम्नलिखित पद में पुत्री हत्या का उल्लेख किया है –

कॅचन दितिथम गुलालु यचुय,
कॅचन जोनुथ नु दिनस वार।
कॅचन छुनिथम नाल्य ब्रह्म हचुय,
बगवानु चानि गच नमस्कार।।

'कुछ को तुमने कई गुलेलाला दिए (अर्थात् पुत्र ही पुत्र दिए)

और कुछ को कुछ भी न देना उचित समझा। कुछ के गले ब्रह्म-हत्याएँ (पुत्रियाँ ही पुत्रियाँ) मढ़ दीं। हे भगवान! (अपरंपार) गति को नमस्कार। स्वयं ललद्दय ने स्त्री-जीवन के कष्टों को भोगा था। वही दर्द उनकी वाणी में अभिव्यक्त हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन कश्मीरी समाज में भी लिंग-भेद की समस्या विद्यमान थी। 15वीं शताब्दी में गुरु नानक देव ने सिक्ख धर्म के सामुदायिक सिद्धांतों में मानव मात्र को महत्त्व दिया न कि जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, क्षेत्र आदि को। स्त्री के प्रति उनकी दृष्टि उदार है। उन्होंने स्त्रियों को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में बराबरी का स्थान दिया और उसके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा कि *सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान?* अर्थात बादशाहों को जन्म देने वाली (स्त्री) के संबंध में हमें बुरा हरगिज नहीं सोचना चाहिए। साथ ही सती प्रथा जैसी बुराईयों का भी विरोध किया – *सती आ एहि न आखीअनि जो मड़िआ लगि जलंनि। नानक सतीआ जाणीअनि जि बिरह चोट मंरनि।।*

कन्या हत्या को ललदयद ने ब्रह्म हत्या कहा था। इस सामाजिक बुराई का विरोध मेरठ, झज्जर आदि जनपदों के जनकवियों की वाणी में भी मिलता है। आधुनिक युग में अनेक समाज सुधारकों ने कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध निरंतर संघर्ष किया। लेकिन देश में लड़कों के अनुपात में लड़कियों की संख्या लगातार घटती जा रही है। लड़की पैदा होने पर थाली नहीं बजाई जाती। उसे बोझ माना जाता है। इस पक्षपात पूर्ण मानसिकता के दूरगामी प्रभाव सामने आने लगे हैं। महात्मा गांधी ने भी कन्या भ्रूण हत्या के गंभीर परिणाम की ओर संकेत किया था – *जबतक बच्चियों के जन्म का स्वागत उसी प्रकार नहीं किया जाता जिस प्रकार लड़कों के जन्मने पर किया जाता है, तब तक हमें मालूम होना चाहिए कि भारत आर्थिक पक्षाघात से पीड़ित है।* इस समस्या के कारण देश के विभिन्न राज्यों में लिंगानुपात का अंतर

बढ़ता ही जा रहा है। हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, राजस्थान आदि राज्यों में यह अनुपात प्रति हजार पर नौ सौ से भी कम हो गया है। हरियाणा प्रदेश में लिंगानुपात 1,000 लड़कों पर 918 लड़कियों का है। इस बिगड़ते लिंगानुपात से समस्या की गंभीरता का अनुमान लगाया जा सकता है। कन्या शिशु हत्या अब भी जारी है। प्रति वर्ष बालकों से 33,000 अधिक बालिकाएँ शैशवकाल में मर जाती हैं। अनेक मौतों का कारण उदासीनता अथवा जानबूझकर की गई लापरवाही को माना जाता है क्योंकि लड़की को 'भार' समझा जाता है।

महादेवी वर्मा ने *शृंखला की कड़ियाँ* निबंध संग्रह में भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक कोणों से देखने का प्रयास किया है। यह निबंध संग्रह सन् 1942 में प्रकाशित हुआ था। लेखिका ने इस संग्रह के निबंधों में उन सभी समस्याओं का उल्लेख किया है जो कन्या भ्रूण हत्या के लिए किसी न किसी रूप में जिम्मेवार हैं। नारी होने के नाते महादेवी वर्मा ने अपने जीवन के गहन अनुभवों को जिस ढंग से अभिव्यक्त किया वह उल्लेखनीय है। वह लिखती हैं – "अनेक बार नारी की बाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन की ओर ध्यान न देकर मैं उसकी शक्तियों को जाग्रत करके परिस्थितियों में साम्य लाने वाली सफलता संभव कर सकी हूँ। समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यतः भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। कहीं उसमें साधारण दयनीयता है और कहीं असाधारण विद्रोह है, परंतु संतुलन से उसका जीवन परिचित नहीं।" लेखिका का वक्तव्य समस्या के समुचित ज्ञान पर बल देता है। समस्या को समझे बिना उसके समाधान के प्रयास उसे और विकट बना सकते हैं। वास्तव में महादेवी वर्मा के आलोचनात्मक गद्य को हिंदी का पहला स्त्रीवादी साहित्यशास्त्र

कहा जा सकता है। महादेवी वर्मा प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री की सफलता को अंकित करते हुए कहती हैं कि "पुरुष की समानता कर उसने यह प्रमाणित कर दिया कि स्त्री किसी भी रूप में पुरुष से कमजोर नहीं है।" हमने सन् 1942 में प्रकाशित शृंखला की कड़ियाँ निबंध संग्रह को महत्व न देकर सीमोन द बोउवार की पुस्तक *द सेकेंड सेक्स* जो 1959 में हमारे सम्मुख आई, को अधिक महत्व दिया। हमें अपनी समस्याओं को अपने परिवेश और परिस्थितियों के संदर्भ में समझना और परखना होगा तभी हम समस्या के समाधान की ओर अग्रसर हो सकेंगे। मर्ज को समझे बिना दवा का प्रयोग घातक होता है इसलिए हमें बुनियादी प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

कन्या भ्रूण हत्या का बुनियादी प्रश्न स्त्री से जुड़ा है। आज का स्त्री-विमर्श उसे रेखांकित करता है। यह प्रश्न समाज-निरपेक्ष नहीं है। अतः विभिन्न सामाजिक संदर्भों में ही कन्या भ्रूण हत्या के बुनियादी प्रश्न और उससे जुड़े सरोकारों की पड़ताल करनी होगी, क्योंकि समाज का ताना-बाना जिन रिश्तों की बुनावट से निर्मित है वे तार–तार हो चुके हैं। अपने जीवन के अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति करते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे कोने तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी-बूढ़ियाँ मूक संकेत से गाने वाले-वालियों को जाने के लिए कह देती और बड़े-बूढ़े इशारे से नीखे बाजे वालों को विदा कर देते यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।" स्वामी विवेकानंद का भी मत है कि "भारतीय घरों में कन्या एक समस्या है...। लड़की का विवाह करने के लिए कभी-कभी तो पिता को भिखारी बन जाना पड़ता है। वर का पिता अपने पुत्र के लिए बहुत अधिक मूल्य मांगता है...। यही कारण है कि कन्या हिंदू जीवन

की एक बड़ी समस्या है। दहेज प्रथा भी इसका एक कारण है। तभी तो माँ-बाप कहते हैं कि बेटी को डिग्री दें या दहेज। जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता-पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की ओर गया... उसकी इच्छा, अनिच्छा, स्वीकृति-अस्वीकृति, योग्यता-अयोग्यता की न कभी किसी ने चिंता की और न करने की आवश्यकता का अनुभव किया।" बेटी पैदा न हो तभी अच्छा है। इस पंक्ति में माँ की पीड़ा घनीभूत है जिसे अभिव्यक्त करने में वह असमर्थ है। लेखिका का मानना है कि "हमारे यहाँ संतान का अभाव नहीं है, अभाव है माताओं का।" कोई भी माँ इतना कठोर निर्णय नहीं ले सकती क्योंकि भारतवर्ष में स्त्रीत्व मातृत्व का ही बोध है, मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता, कष्ट–सहिष्णुता और क्षमाशीलता का भाव निहित है। आज वह मातृत्व कहाँ लुप्त हो गया है, नवजात बच्ची की माँ द्वारा हत्या करने को गंभीर अपराध बताते हुए हाईकोर्ट ने अपनी चिंता प्रकट करते हुए कहा कि आजादी के 62 साल बाद भी तथाकथित आधुनिक भारतीय समाज बेटी के साथ भेदभाव और हत्या की मानसिकता को नहीं बदल पाया है। हाईकोर्ट ने नवजात बेटी की हत्या करने वाली माँ की उम्रकैद की सजा बरकरार रखी। (राष्ट्रीय सहारा, 13.03.2010) कन्या भ्रूण हत्या उसी का परिणाम है। उस मातृत्व को लकवा क्यों मार गया है? ऐसा जघन्य अपराध वह किन कारणों से करने को विवश है? उनकी पड़ताल ही आवश्यक नहीं है, उनका उन्मूलन भी जरूरी है।

साहित्य मनुष्य को संवेदनशील और विवेकशील बनाता है। अतः साहित्य 'कन्या भ्रूण हत्या' के उन्मूलन में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करता है। वह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है, तोड़ता नहीं। महादेवी वर्मा ने स्त्री-पुरुष संबंधों की जो व्याख्या की है उसमें दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वे परस्पर एक को दूसरे से जोड़ती हैं। यह

व्यक्ति तथा समाज पर भी लागू होता है। व्यक्ति तथा समाज का संबंध सापेक्ष कहा जा सकता है; क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की उपस्थिति संभव नहीं है। व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा के लिए समाज बना है और समाज के अस्तित्व के लिए व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। हमारी थोड़ी-सी जागरूकता से हजारों कन्याओं की जान बच सकती है। कन्या भ्रूण की सुरक्षा समाज की सुरक्षा है क्योंकि उसी में वह सृजनात्मक क्षमता निहित है जो समाज को बचा सकती है। अन्यथा देश में लड़कियों का टोटा पड़ जाएगा। यूएनएफपीए के अनुसार भारतवर्ष में प्रतिदिन 2,000 लड़कियाँ लापता हो जाती हैं। आज के युग ने इसे भ्रूण हत्या का नया रूप दे दिया। परिवार-नियोजन के तले खूब हत्याएँ हो रही हैं। कुल मिलाकर स्थिति जस की तस बनी हुई है, बस तरीकों में आधुनिकता आ गई। चिकित्सकीय तकनीक में हाल में हुई एक प्रगति एम्नियो सिंटेसिस से अजन्मे शिशु का लिंग निर्धारण संभव हो गया है और इससे कन्या भ्रूण की हत्या आसान हो गई है।

आज के दौर में शहरी क्षेत्र में शिक्षित वर्ग और उच्च वर्ग में संपत्ति, वंश-परंपरा आदि कारणों से पुत्र की ललक बढ़ती जा रही है। सभ्य समाज को लड़के-लड़की में भेद नहीं करना चाहिए। सभी बच्चों को समान महत्त्व देना चाहिए। *लड़की* कहानी इसका सटीक उदाहरण है। "समाज ने स्त्री के संबंध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर संपन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नहीं है वरन् अर्थ के संबंध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बंधन में बँधी हुई है। कन्या को पराया धन कहकर उसे सभी सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि वर्तमान दौर में कन्या भ्रूणहत्या का अनुपात शहरी और शिक्षित

समुदाय में अप्रत्याशित रूप से अधिक पाया गया है। अशिक्षा इसका मुख्य कारण नहीं है। समाज में बिगड़ते लैंगिक अनुपात के पीछे अनेक घटक और कारण हैं जैसे पुत्र-प्राप्ति की इच्छा अर्थात् वंश-परंपरा को बरकरार रखने के लिए, पुत्र को वृद्धावस्था का सहारा मानना, पुत्र को अंतिम संस्कार – पिंडदान का अधिकारी मानना आदि। कुल मिलाकर ये घटक पितृसत्तात्मक सोच को पोषित करने वाले हैं। आज इस सोच को बदलने की आवश्यकता है। अनेक समाजसेवी संस्थाएँ इस दिशा में पूरी निष्ठा से कार्य कर रही हैं, जैसे नन्हीं फाउंडेशन, Sure, लुपिन आदि।

महिलाएँ चाहे कितनी भी शिक्षित हो जाएँ, लेकिन अधिकांशतः बेटा ही चाहती हैं क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में अपनी स्थिति को ऊँचा बनाए रखने का एक मात्र उपाय 'बेटे की माँ' होना है। लेकिन इससे तो बेटी भली जो माँ-बाप के प्रति संवेदनशील तो है। महादेवी वर्मा ने अपने एक संबोधन में कहा था "न जाने इन महलों की नींव में कितनी मीराएँ सोई पड़ी हैं। उनसे यदि एक अंगारा ही बचा हो तो वह सौ दीयों को जलाने की क्षमता रखता है।" महादेवी वर्मा का गद्य-पद्य हमें स्त्री और उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाता है, जीवन को पुनःसृजित करता है। इसलिए 'साहित्य हमारे अनुभव, जीवन और जगत् तथा भाषा को परिमार्जित करता है। वह संवेदना को नए चेहरे के रूप में उभारता है। साहित्य के माध्यम से लिंगभेद की असमानताओं और सामाजिक विषमताओं को समझ कर उन्हें नए रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धांत में मेरा कोई विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाश-तत्त्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है। जब तक प्रकृति व्यक्त नहीं होती तब तक विकृति के ध्वंस में अपनी शक्तियों

को उलझा देना वैसा ही है जैसा प्रकाश के अभाव में अंधेरे को दूध से धो कर सफेद करने का प्रयास। वास्तव में अंधकार स्वयं कुछ न होकर आलोक का अभाव है; इसी से तो छोटे से छोटा दीपक भी उसकी सघनता नष्ट कर देने में समर्थ है। *शृंखला की कड़ियाँ* निबंध संग्रह में महादेवी वर्मा ने उन सभी कारणों की ओर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संकेत किया है जो वर्तमान समाज में कन्या भ्रूण हत्या के उपादान हैं। यह निबंध संग्रह उन सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करता है जिनमें कन्या भ्रूण हत्या का अभिशाप विद्यमान है। उनके निराकरण के लिए दृढ़ता से प्रयास करना होगा तभी इस अभिशाप से मुक्ति होगी और स्वस्थ समाज का निर्माण भी संभव हो सकेगा।

□□□

मूल्य-आधारित शिक्षा : शिक्षक के शैक्षिक एवं सामाजिक दायित्व

डॉ. विमलेश शर्मा

शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है, यह विकास की अनवरत प्रक्रिया है व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में कुछ न कुछ अवश्य सीखता है। शिक्षा मनुष्य का सर्वांगणी विकास करती है अर्थात् समाज के विकास की आधारशिला भी है। यह मानव का निर्माण कर उसे व्यवहार योग्य बनाती है, नए-नए अनुभवों को प्रदान बालक की अंतर्निहित शक्तियों का विकास करती है और वह स्वयं को वातावरण से समायोजित कर योग्यतानुसार परिवार, समाज एवं राष्ट्र के विकास में योगदान दे सके। शिक्षा से ही सुशिक्षित चितनशील समाज का निर्माण संभव है। इस विकास के लिए विद्यालय, जो कि समाज का लघु रूप है, इस प्रकार का वातावरण प्रदान करता है जहाँ राष्ट्र के भविष्य का निर्माण होता है। इस निर्माण कार्य को सुस्थिर दिशा प्रदान करने का दायित्व अध्यापकों को जाता है। अध्यापकगण इस कार्य का निर्वाह अति सरल एवम् सहज रूप में करते हैं। इसीलिए शिक्षकों को पूजयनीय माना जाता है। कहा भी गया है :–

गुरुब्रह्मा, गुरुविष्णुः, गुरुदेवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अध्यापकगण शिक्षा के शक्तिशाली स्तंभ हैं वे कि शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण के क्षेत्र में उत्तम भविष्य के निर्माता ही नहीं अपितु ज्योति से ज्योति को प्रज्जवलित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। सुशिक्षित उत्तरदायी अध्यापक गतिशील समाज का निर्माण एवं संरचना कर शाश्वत मानवीय मूल्यों का पोषण और उनकी रक्षा करते हैं।

मूल्य आधारित शिक्षा प्रकाशमान सूर्य के समान है जिसको निष्ठावान शिक्षक अपने सजीव/जीवंत शिक्षण से विषयवस्तु द्वारा दैनिक जीवन के अनुभवों को जोड़कर बालकों को विश्लेषणात्मक अंतदृष्टि प्रदान कर सकता है। अध्यापकों का स्नेहपूर्ण, सद्भावना प्रेरित एवं निष्पक्ष व्यवहार बालकों के चारित्रिक विकास को प्रभावोत्पादक बनाता है। छोटे बालकों को स्नेह एवं सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है जिसकी अपेक्षा बालक गुरु से करता है बालकों में चारित्रिक सुधार लाने के लिए स्वयं शिक्षक को अपने आचरण का आदर्श प्रस्तुत करना होगा।

मूल्य आधारित शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता बाल्यकाल में होती है जहाँ बालकों में अपेक्षित गुणों, संस्कारों एवं मूल्यों की नींव पड़ती है। शिक्षक और बालकों का परस्पर व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण एवं आदर्शमय हो क्योंकि शिक्षक के व्यक्ति-व्यवहार का प्रभाव बालकों के नैतिक उन्नयन पर बहुत अधिक पड़ता है। इसीलिए निम्नलिखित को मूल्य आधारित शिक्षा का सूत्र माना जाता है :–

- बच्चों में सृजनात्मक एवं रचनात्मक अभिवृत्ति का विकास।
- बच्चों को सामाजिक शिष्टाचार एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों से अवगत कराना।

- बच्चों के संवेगात्मक संतुलन और सामाजिक समन्वय की अभिवृत्ति का विकास करना।
- उन्हें स्वस्थ विचार और सटीक तर्क देने के अवसर प्रदान करना।
- उनमें प्रकृति-प्रेम एवं श्रम के प्रति आस्था का विकास करना।
- बालकों को लिखित एवं मौखिक अभिवृत्ति के लिए तैयार करना।
- उनमें पर्यावरण संरक्षण-संवर्द्धन हेतु रुचि, विकसित करना।
- उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना।

शिक्षा शब्दकोष के अनुसार मूल्य आधारित शिक्षा वह पद्धति है जो बालकों को स्वस्थ मानसिक आधार प्रदान कर उनमें सद्गुणों का विकास कर उनके भावी व्यक्तित्व को समाजोन्मुख बनाने में सार्थक होती है। इसका क्षेत्र बहुआयामी है, क्योंकि यह प्राचीन एवं नवीन, शाश्वत एवं सामयिक, परंपरागत एवं प्रगतिशील, समस्त श्रेयस्कर मूल्यों की संगम हैं :–

घर/परिवार मूल्य आधारित शिक्षा का प्रथम अभिकरण हैं जहाँ बालकों की सही आदतों का निर्माण होता है, व्यवहार सुनिश्चित होते हैं, संस्कृति का हस्तांतरण होता है, परोपकार की भावना विकसित होती है।

विद्यालय मूल्य आधारित शिक्षा का द्वितीय अभिकरण है विद्यालय के नियम-अनुशासन, अध्यापकों का व्यक्तित्व, पाठ्यक्रम, सहगामी क्रियाओं का समग्र प्रभाव बालकों के नैतिक विकास पर पड़ता है इसलिए विद्यालय को समाजीकरण की प्रक्रिया का केंद्र कहा जाता है।

शिक्षा किसी भी समय या युग की हो, आधारित समाज पर

मूल्य-शिक्षा का प्रभाव भिन्न-भिन्न तरीकों, विधियों, परिस्थितियों के अनुरूप दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि व्यक्ति का समस्त स्वरूप व्यक्तित्व, ज्ञान, चारित्रिक विकास, संस्कृति, सामाजिक न्याय, नागरिकता, नैतिकता, आध्यात्मिकता आदि मूल्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में सही चिंतन, सही अभिवृत्ति, जीवन-कौशल रूपी आचरण तथा नैतिक मूल्यों के समावेश से जिनको प्राचीन काल में धर्म, काम और मोक्ष के रूप में जाना जाता था तथा अध्ययन की उपयोगी विधियों – तर्क, विश्लेषण, संश्लेषण में व्यक्ति को पारंगत बनाकर समयानुकूल व्यावहारिक जीवन में उपयोग से था। वर्तमान संदर्भ में वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के कारण हुए आश्चर्यजनक परिवर्तनों ने भी शिक्षा जगत में दिन-प्रतिदिन कम या अधिक भौतिकवादी संस्कृति को अपनाकर मूल्य आधारित शिक्षा के आयामों में संकट उत्पन्न कर दिया है। परिवर्तित जीवन मूल्य आज युवा पीढ़ी के मस्तिष्क को झकझोर रहे हैं। बदलते परिवेश की दार्शनिकता, सामाजिक संदर्भ, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, विज्ञान एवं तकनीकी के प्रसार-प्रचार द्वारा मूल्यों को प्रभावित कर रहे हैं।

परंपरागत और आधुनिक मूल्यों के परस्पर संघर्ष में शिक्षा ही शक्तिशाली यंत्र है जो युवा पीढ़ी में अपेक्षायोग्य मूल्यों का संचरण कर संतुलन स्थापित कर सकती है। इसके लिए शिक्षकों की शैक्षिक एवं सामाजिक भूमिका महत्वपूर्ण है। मूल्य आधारित शिक्षा के बीज परिवार में ही पड़ जाते हैं, विद्यालय केवल उन्हें पल्लवित और पुष्पित करते हैं। समाज के अन्य अभिकरण उसे फलीभूत कर सात्विक रूप प्रदान करते हैं। विद्यालय में शिक्षक बालकों के समक्ष आदर्शों का प्रतिरूप होता है जो स्वयं के जीवन-मूल्यों द्वारा नई पीढ़ी में मूल्य शिक्षा का संचरण करता है। शिक्षक के व्यक्तित्व में वैयक्तिक मूल्य – सरलता,

मधुरता, सादगी, शिष्टाचार, सत्यवाणी, धैर्य, स्वावलंबन, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, आत्मविश्वास, निष्पक्षता, प्रामाणिकता आदि के साथ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक, बौद्धिक, कलात्मक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय मूल्यों का समावेश होना चाहिए क्योंकि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर बालक अपने अभिभावकों से भी अधिक अध्यापकों प्रभावित होते हैं।

शिक्षक की शैक्षिक भूमिका के रूप में सम्मानित विद्यालय/महाविद्यालयों में विभिन्न विषयों के अध्यापक शामिल हैं जो विषय सांस्कृतिक विरासत को स्वयं के अनुभवों के साथ जोड़कर शैक्षिक स्तरों पर स्फुरण करते हैं तथा पाठ्यक्रम के विभिन्न पक्षों के प्रति छात्रों की रुचि को जाग्रत कर चेतना उत्पन्न करते हैं।

अंत में, यही कहा जा सकता है कि शिक्षक, अध्यापक-प्रशिक्षक, प्रशासकगण तथा अभिभावक समाज में बालक-बालिकाओं को मूल्य आधारित शिक्षा को प्रदान करने में एकजुट होकर कार्य करें ताकि शिक्षा सभी बालक-बालिकाओं के लिए रुचिकर आनंददायी तथा सुखद एवं संपूर्ण मानव बनाने में सहायक सिद्ध हों तथा प्रत्येक मानव शिक्षा ग्रहण कर स्वयं हेतु, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के कार्यों में सफलतापूर्वक योगदान दे सकें।

❑❑❑

इस अंक के लेखक

1. डॉ. आनन्द प्रकाश पाण्डेय – 10/18 E II, लाउदर रोड
जार्ज टाउन
इलाहाबाद–21002

2. डॉ. दिनेश मणि – 35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड
जार्ज टाउन
इलाहाबाद–21002

3. सतीश चंद्र सक्सेना – बीबी 35 एफ, जनकपुरी
नई दिल्ली–110058

4. डॉ. विश्वनाथ मिश्र – मकान सं. 67/68,
ब्लॉक–सी, कुतुब विहार,
फेज–I, गोयला डेयरी
नई दिल्ली–110071

5. डॉ. रंजित एम. – प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
एम.ई.एस. अस्माबी कॉलेज
पी. वेंबलूर–680671

6. डॉ. कृष्ण कुमार कौशिक – एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली–110025

7. डॉ. विमलेश शर्मा – शिक्षा विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय
संस्कृत विद्यापीठ
कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली– 110016

❑❑❑

शब्द-भंडार
(पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली से)

A

advertising, poster	इश्तहार द्वारा विज्ञापन
advertising, radio	रेडियो, विज्ञापन
advertising agency	विज्ञापन एजेंसी, विज्ञापन अभिकरण
advertising agent	विज्ञापन एजेंट, विज्ञापन अभिकर्ता
advertising angle	विज्ञापन दृष्टिकोण
advertising appeal	विज्ञापन अपील
advertising approach	विज्ञापन उपागम, विज्ञापन तरीका
advertising area	विज्ञापन क्षेत्र
advertising artist	विज्ञापन कलाकार
advertising association	विज्ञापन संघ
advertising budget	विज्ञापन बजट
advertising bulletin	विज्ञापन बुलेटिन
advertising catalogue	विज्ञापन सूचीपत्र
advertising censorship	विज्ञापन अभिवेचन
advertising circular	विज्ञापन परिपत्र
advertising club	विज्ञापन क्लब
advertising column	विज्ञापन स्तंभ
advertising compaign	विज्ञापन अभियान

advertising competition	विज्ञापन प्रतियोगिता
advertising consultant	विज्ञापन परामर्शदाता
advertising contest	विज्ञापन प्रतिद्वंद्विता
advertising copywriter	विज्ञापन वृत्त लेखक, विज्ञापन लिपि लेखक
advertising cost	विज्ञापन लागत
advertising directory	विज्ञापन निर्देशिका
advertising division	विज्ञापन प्रभाग
advertising executive	विज्ञापन कार्यपालक,
advertising expenditure	विज्ञापन व्यय
advertising expert	विज्ञापन विशेषज्ञ
advertising film	विज्ञापन फिल्म
advertising gift	विज्ञापन उपहार, विज्ञापन भेंट
advertising man	विज्ञापन व्यवसायी
advertising manager	विज्ञापन व्यवस्थापक, विज्ञापन प्रबंधक
advertising material	विज्ञापन सामग्री
advertising matter (=advertisement copy)	विज्ञापन लिपि
advertising medium	विज्ञापन माध्यम
advertising message	विज्ञापन संदेश
advertising news	विज्ञापन समाचार
advertising page	विज्ञापन पृष्ठ

advertising practitioner	विज्ञापन व्यवसायी
advertising profession	विज्ञापन व्यवसाय
advertising publication	विज्ञापन प्रकाशन
advertising rate	विज्ञापन दर
advertising regulation	विज्ञापन विनियम
advertising research	विज्ञापन अनुसंधान
advertising return	विज्ञापन प्रतिलाभ
advertising revenue	विज्ञापन आय
advertising salesman	विज्ञापन संग्रहकर्ता
advertising schedule	विज्ञापन क्रम-सूची
advertising sketch	विज्ञापन रेखाचित्र
advertising solicitor	विज्ञापन संग्राहक
advertising specialist	विज्ञापन विशेषज्ञ
advertising tape	विज्ञापन फीता, विज्ञापन टेप
advertising theme	विज्ञापन विषय
advertising value	विज्ञापन महत्व, विज्ञापन मूल्य
aerial (l.&B.)	1. (adj.) आकाशी, हवाई 2. (N.) एरियल, आकाशी (तार)
aerial advertising	हवाई विज्ञापन
aether (l.&B.)	ईथर, अवकाश
agate line	एगेट लाईन
agency system	एजेंसी प्रणाली

agitator (P.P.)	विलोड़क, आंदोलक
air bell (=bubble mark)	फफोला चिह्न, बुलबुला चिह्न
air blast (P.P.)	हवा का झोंका, वात्या
air brush (P.P.)	हवा-ब्रुश
air compressor (I.&B.)	वायु संपीड़क
air condenser (I.&B.)	वायु-संधारित्र
air cooled	वायु शीतल
air core choke (I.&B.)	वायु क्रोड चोक
air cushion head (P.P.)	वायुतल्प शीर्ष
air cushion head leather cup (P.P.)	वायुतल्पशीर्ष का चमड़े का प्याला
air cushion head plate (P.P.)	वायुतल्पशीर्ष प्लेट
air cushion head spring expander (P.P.)	वायुतल्पशीर्ष कमानी प्रसारक
air cylinder	वायु सिलिन्डर, वायु बेलन
air dielectric capacitor (l.&B.)	वायु डाइइलैक्ट्रिक संधारित्र
air-dried	वायु शोषित
air-dry	वायु शुष्क
air hole (in air cushion head plate)	वायु विवर (वायुतल्प शीर्ष प्लेट में)
air-knife coating	वायु-फल लेपन
air-proof paper	वायु-सह कागज
air roll	वायुरोधी बेलन

alabaster	एलाबास्टर
albert	एलबर्ट (कागज का आकार)
album	चित्र संग्रह, एलबम
albumenized paper	क्षारीय कागज
alignment	1. संरेखण 2. (I.&B.) एकरेखण 3. (P.P.) समरेख
alkali-cellulose	क्षारीय सेलुलोस
alkali-proof	क्षार-सह
All India Newspaper Editors Conference	अखिल भारतीय समाचारपत्र संपादक सम्मेलन
All India Radio (l.&B.)	आकाशवाणी
all in hand	पूर्ण वितरित (लिपि)
allocation	बंटन, बंटवारा
allotment of programme (I.&B.)	प्रोग्राम आबंटन, कार्यक्रम सौंपना
alloy	(ii) मिश्र धातु, ऐलाय, मिश्रातु (v) धातु मिश्रण करना
all-purpose linotype	सर्वकारी लाइनोटाइप
all up	पूर्ण निष्पादित
all-wave aerial (L,&B.)	सर्वतरंग एरियल
almanac	पंचांग, तिथि-पत्र
alphabet length	अक्षर लंबाई
alpha-cellulose	अल्फा सेलुलोस

alphatype	अल्फाटाइप
alphatype printer	अल्फाटाइप मुद्रक
alteration of colours	रंग परिवर्तन
alternating current (ac.) (I.&B.)	प्रत्यावर्ती धारा (प्र.धा.)
alternation	एकांतरण, प्रत्यावर्तन
alternative programme (I.&B.)	वैकल्पिक प्रोग्राम, वैकल्पिक कार्यक्रम
alternator (I.&B.)	प्रत्यावर्तित्र
alum (=aluminium sullphate)	फिटकरी
aluminoferric	ऐलुमिनो फैरिक
alum liquor	फिटकरी घोल
amateur (I.&B.)	शौकिया, अव्यवसायी, नौसिखिया
amateur performance	नौसिखिया काम
ammeter (I.&B.)	अमीटर
ammonia plant	अमोनिया संयत्र
ammunition paper	कारतूसी कागज

□□□

लेखकों के लिए अनुदेश

'ज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक पत्रिका है जिसमें मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित लेख प्रकाशित होते हैं। इस पत्रिका का उद्देश्य हिंदी में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों से संबद्ध उपयोगी एवं नवीनतम मूल पाठप्रधान तथा पूरक साहित्य को लोकप्रिय बनाना है। यह पत्रिका मिले-जुले प्रकार की है जिसमें तकनीकी लेख, शोध लेख, तकनीकी निबंध, मॉडल शब्दावलियाँ तथा परिभाषा-कोश, कविताएँ और मानविकी से संबंधित कहानियाँ, सामाजिक विज्ञान, व्यंग्य चित्र, तकनीकी सूचना, तकनीकी समाचार, पुस्तक समीक्षा आदि से संबंधित सामग्री प्रकाशित की जाती है।

(i) पत्रिका के लिए भेजी गई पांडुलिपियाँ/लेख मूल रूप में होने चाहिए और ऐसे होने चाहिए जो पहले प्रकाशित नहीं हुए हों। वे केवल हिंदी में होने चाहिए।

(ii) लेखकों को सलाह दी जाती है कि वे सामयिक विषयों/मुद्दों पर लेख भेजें।

(iii) लेख सरल और बोधगम्य भाषा में होने चाहिए।

(iv) लेख में अधिक से अधिक 4,000 शब्द होने चाहिए।

(v) लेख A-4 आकार के कागज पर एक तरफ डबल स्पेस में सफाई से टंकित किया गया या हाथ से स्पष्ट/सुपाठ्य लिखा गया होना चाहिए और दोनों तरफ पर्याप्त हाशिए छोड़े गए होने चाहिए।

(vi) लेख का सार-संक्षेप भी इसके साथ अवश्य भेजा जाना चाहिए।

(vii) लेखों में आयोग द्वारा निर्मित/परिभाषित किए गए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(viii) यदि आवश्यक हो तो लेख में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों के अंग्रेजी पर्यायों को कोष्ठकों में भी दिया जा सकता है।

(ix) रंगीन और श्वेत-श्याम फोटोग्राफ स्वीकार किए जाते हैं। प्रस्तुत किए गए रेखाचित्र सफेद कागज पर ब्लैक इंडिया इंक से तैयार किए जाने चाहिए।

(x) किसी लेख का प्रकाशित किया जाना संपादक के विवेक पर होगा और इस संबंध में उसके निर्णय को अंतिम माना जाएगा।

(xi) लेखों को स्वीकार किए जाने के संबंध में कोई भी पत्र-व्यवहार करने का प्रावधान नहीं है।

(xii) अस्वीकृत लेखों को वापस नहीं किया जाएगा। लेखकों को सलाह दी जाती है कि वे उनके लिए टिकट लगे लिफाफे न भेजें।

(xiii) समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ प्रस्तुत की जाएँ।

(xiv) प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर रु. 250/–प्रति 1,000 शब्द है लेकिन उसकी न्यूनतम राशि रु. 150/– और अधिकतम राशि रु. 1,000/– होगी।

(xv) सभी भुगतान पत्रिका के प्रकाशित होने के बाद किए जाते हैं।

(xvi) लेखक अपने लेखों की दो प्रतियाँ कृपया संबंधित पत्रिका के संपादक को भेज सकते हैं यथा ..
डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल
संपादक,
'ज्ञान गरिमा सिंधु',
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली– 110066

अभिदान से संबंधित सूचना

ज्ञान गरिमा सिंधु/विज्ञान गरिमा सिंधु के सभी अंक पत्रिका के ग्राहकों को डाक द्वारा भेजे जाते हैं।
अभिदान दरें इस प्रकार हैं :

सदस्यता शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए प्रति कापी	रु. 14/–	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक शुल्क	रु. 50/–	पौंड 5.83	डालर 18.00
छात्रों के लिए प्रति कॉपी	रु. 8/–	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक शुल्क	रु. 30/–	पौंड 3.50	डालर 2.88

छात्रों को अपनी शैक्षणिक संस्था के प्रधान द्वारा प्रदत्त इस आशय का प्रमाण-पत्र (देखें पृष्ठ 109) अवश्य संलग्न करना चाहिए कि वह संस्था का एक छात्र है।

प्रोफार्मा

(आयोग के कार्यक्रमों में सहयोजित होने के लिए आत्मवृत्त भेजने हेतु)

1. नाम : ____________________
2. पदनाम : ____________________
3. पता : कार्यालय : ____________________
   निवास : ____________________
4. संपर्क नं. टेलीफोन / मोबाइल / ई-मेल ____________________
5. शैक्षिक अर्हता ____________________
6. विषय-विशेषज्ञता ____________________
7. भाषाओं का ज्ञान जिन्हें पढ़ / लिख सकते हैं ____________________

*8. शिक्षण का अनुभव ____________________

*9. शोध कार्य का अनुभव ____________________

*10. शब्दावली निर्माण का अनुभव ____________________

*11. शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी / क्षेत्रीय भाषा में शिक्षण का अनुभव ____________________

मैं आयोग से सहयोजित होना चाहता हूँ (कृपया टिक लगाएँ)

- ☐ शब्दावली निर्माण सत्रों में विशेषज्ञ के रूप में
- ☐ आयोग के कार्यक्रमों में संसाधक के रूप में
- ☐ ज्ञान गरिमा सिंधु / विज्ञान गरिमा सिंधु में प्रकाश्य लेख के लेखक के रूप में या पाठ-संग्रह(मोनोग्राफ) / चयनिका के लेखक के रूप में
  - ☐ पांडुलिपि संलग्न है
  - ☐ अधिक जानकारी उपलब्ध कराएँ
- ☐ 'ज्ञान गरिमा सिंधु' / 'विज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका का ग्राहक बनकर
  - ☐ ड्राफ्ट / पोस्टल आर्डर संलग्न है
  - ☐ अधिक जानकारी उपलब्ध कराएँ

हस्ताक्षर

*जहाँ लागू हो

पत्रिका की सदस्यता हेतु ग्राहक फार्म

व्यक्ति / संस्थाएँ या छात्र निम्नलिखित फार्मेट में अभिदान के लिए आवेदन कर सकते हैं :–

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / श्रीमती .... इस स्कूल / कॉलेज / विश्वविद्यालय के .... विभाग में वास्तविक छात्र / छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्रिंसिपल / विभागाध्यक्ष)

अभिदान फार्म

अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–110066

महोदय,

मैं, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के नाम नई दिल्ली में .... बैंक के खाते में देय डिमांड ड्राफ्ट नं. .... दिनांक .... द्वारा त्रैमासिक पत्रिका 'ज्ञान गरिमा सिंधु / विज्ञान गरिमा सिंधु' के लिए वार्षिक अभिदान के रु. .... भेज रहा हूँ / रही हूँ।

(हस्ताक्षर)

टिप्पणी : खाते में देय ड्राफ्ट अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के नाम नई दिल्ली के किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक के लिए बनवाया जा सकता है।

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें।

अभिदान से संबंधित पत्र-व्यवहार

अभिदान से संबंधित समस्त पत्र-व्यवहार निम्नलिखित के साथ किया जाए :– वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली-110066 फोन नं. (011) 26105211 एक्स. 246 फैक्स नं. (011) 26101220	पत्रिकाएँ वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग या निम्नलिखित अधिकारी से खरीद कर प्राप्त की जा सकती हैं :– प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सिविल लाइंस, दिल्ली–110054

MGIPRRND 2561 HRD/2012—1 000

भारत सरकार
© प्रकाशन नियंत्रक

पी.सी.एस.टी.टी. 2 (7-9) 2011
1000

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology

Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित ।